वैदिक ग्रन्थ अङ्क ३ ।

॥ ओ३म् ॥

॥ हवनमन्त्राः ॥

अर्थात्

ईश्वरस्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण और हवनमन्त्र ।

छन्द, टिप्पणी, और शब्दसङ्ग्रह आदि सहित

सरल आर्यभाषा में अनुवादित ।

अनुवादक और प्रकाशक

पण्डित क्षेमकरणदास त्रिवेदी ।

अभ्युदय प्रेस प्रयाग में

बद्री प्रसाद पांडे के प्रबन्ध से मुद्रित ।

पहिली बार १००० पुस्तकें ।	संवत् १९६८ वि० सन् १९१२ ई०	मूल्य प्रति पुस्तक ।)॥

पता—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी, ५२ लूकरगंज, प्रयाग (अलाहाबाद) ।

शुभ समाचार ॥

निःसन्देह अब वह समय है कि सब स्त्री पुरुष घर घर में वेदों का अर्थ जानें और धर्मज्ञ होकर पुरुषार्थी बनें। भारतीय और अन्य देशीय विद्वान् भी वेदों का अर्थ खोजने और प्रकाशित करने में बड़ा परिश्रम उठा रहे हैं। हमारा भी विचार है कि वेदों का यथाशक्ति सरल, स्पष्ट, प्रामाणिक, और अल्पमूल्य भाष्य प्रस्तुत हो, जिस से सब लोग स्वाध्याय [वेदों के अर्थ समझने और विचारने] में लाभ उठावें। परमेश्वर के अनुग्रह से वह मनोरथ सिद्ध होने लगा है, अर्थात् निम्न लिखित वैदिक ग्रन्थ उपस्थित हैं, और होते जाते हैं।

अथर्ववेद भाष्य।

१—जिस भाष्य की इतने दिनों से प्रतीक्षा होरही थी, जिस चौथे ब्रह्मवेद के स्वाध्याय करने के लिये आप को बड़ी लालसा लगी हुयी थी, और जिस के लिये बहुत से महाशयों के नामों से ग्राहक सूची पूरित है, उस वेद का प्रथम काण्ड अब सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की परम कृपा से सरल भाषा में सान्वय पदार्थ, भावार्थ, टिप्पणी, अनुरूप मन्त्र, श्लोक आदि, और संस्कृत में व्याकरण, निरुक्त आदि सहित आप के सामने विद्यमान है। इस के साथ अथर्ववेद भूमिका भी है जिस में सायण भाष्य और अथर्ववेद विस्तार आदि उपयोगी विषयों का वर्णन है। बढ़िया रायल अठपेजी पृष्ठ २०२ मूल्य १।)

२—अथर्ववेद भाष्य, काण्ड २—इसी प्रकार बहुत शीघ्र छपकर प्रकाशित होगा। मूल्य प्रथम काण्ड के लग भग होगा।

३—अथर्ववेद भाष्य सम्पूर्ण—अथर्ववेद में २० काण्ड हैं, कोई छोटा है कोई बड़ा। भाष्य पूरे एक एक काण्ड का छपता है जिस से उस काण्ड का पूरा विषय जान पड़े। प्रत्येक काण्ड का मूल्य उसके विस्तार के अनुसार होगा। जो महाशय सनातन वेदविद्या के प्रेमी अपने नाम पूरे भाष्य के लिये ग्रन्थ छपने से पूर्व ग्राहकसूची में लिखावेंगे, उनको नियत मूल्य में से २०) सैकड़ा छूट देकर पुस्तक छपने पर वी० पी० द्वारा भेजी जाया करेगी।

क्षेमकरणदास त्रिवेदी।

५२ लूकरगंज, प्रयाग (ALLAHABAD.)

हमारे अन्य वैदिक ग्रन्थ ।

४-हवनमंत्राः—अर्थात् चारों वेदों के संगृहीत मन्त्र, ईश्वरस्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण और हवन मन्त्र, विधि आदि, सरल भाषानुवाद, टिप्पणी, शब्द संग्रह आदि सहित बढ़िया रायल अठपेजी पृष्ठ ५६ मूल्य ।)॥

— संक्षिप्त समालोचनायें —

सद्धर्म प्रचारक, गुरुकुल काँगड़ी, १७ फाल्गुण सं० १९६८...आजकल लोग हवनमन्त्र उच्चारण करते हैं, परन्तु प्रायः मन्त्रों के अर्थ नहीं जानते । उन्हें यह पुस्तक अवश्य मंगवा कर पढ़नी चाहिये ।

अभ्युदय,प्रयाग ता० २८ अप्रेल १९१२...इस में ईश्वर स्तुति,स्वस्तिवाचन, शान्ति करण और हवन मंत्र वेद से लेकर सरल हिन्दी भाषा में अनुवादित किये हैं ।...पुस्तक प्रत्येक आर्य पुरुष के रखने योग्य है ।

वेद प्रकाश, मेरठ, मई १९१२ ।...इन सब मन्त्रों का अर्थ भाषा में अब तक नहीं था, इस कमी को इस पुस्तक ने पूर्ण कर दिया है ।

महाशय खुशीराम जी गवर्नमेन्ट पेन्शनर, देहरादून,२५ फाल्गुण ६८ ।... आप ने हवन मन्त्रों का भाषानुवाद करके बड़ा उपकार किया है । आप मेरा नाम अथर्ववेदभाष्य के ग्राहकों में लिख लेवें, जब प्रकाशित हो रुद्राध्याय भाषा अङ्गरेज़ी अनुवाद सहित वी. पी. द्वारा भेज देवें

५—रुद्राध्याय—सुप्रसिद्ध यजुर्वेद अध्याय १६ (नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः) ब्रह्म निरूपक अर्थ संस्कृत, भाषा और अङ्गरेज़ी में शिक्षा, शब्दसाधन आदि सहित । बढ़िया रायल अठपेजी पृष्ठ १४८ मूल्य ।=)

६—तथा—मूलमात्र, बढ़िया रायल अठपेजी पृ० १४ मूल्य)॥

क्षेमकरणदास त्रिवेदी

५२ लूकरगंज, प्रयाग (ALLAHABAD.)

१० दिसंबर १९१२ ।

Printed by P. Kashi Nath Bajpai at the Onkar Press Allahabad.

॥ ओ३म् ॥

भूमिका ॥

यह हवनमन्त्र चारों वेदों से लेकर महर्षि श्रीमद्दयानन्द सरस्वतीजी ने अपनी "संस्कारविधि" में लिखे हैं। इनका प्रचार गुरुकुलों, विद्यालयों, समाजों आदि में नित्य कर्म और मङ्गल उत्सवों में होता है। यह मन्त्र अनेक प्रकार से ईश्वर का निरूपण करते हैं, और इनमें सांसारिक व्यवहार का भी उपदेश है। इस लिये सब मनुष्यों को उचित है कि हवन, प्रार्थना और जप करने में इन का अर्थ समझ कर अपने हृदय को शुद्ध करें और परब्रह्म के गुण कर्म का विचार करके यत्न पूर्वक अपने को सुधारें और धर्म में आरूढ़ रहकर अपना जन्म सुफल करें और आनन्द भोगें॥

इन मन्त्रों का अर्थ अभी तक अपूर्ण और भिन्न भिन्न स्थानों में था, अर्थात् कुछ प्रकरणों का अर्थ आर्यभाषा और उर्दू में आशय के ढङ्ग पर था जिससे शब्दार्थ नहीं समझ पड़ता, और कुछ मन्त्रों का अर्थ वेदभाष्यों की पुस्तकों में, जो सर्वसाधारण को प्राप्य नहीं। यह कठिनाइयाँ दूर करने के लिये अब इस पुस्तक में सब मन्त्रों का शब्दार्थ संक्षेप रीति से सरल बोली में किया गया है कि स्त्री, पुरुष, लड़के, लड़कियां सभी समझ सकें। पुस्तक के अन्त में शब्दसङ्ग्रह है जिसमें कठिन शब्दों की व्युत्पत्ति, निरुक्ति और अर्थ दिये हैं कि समझने में सुगमता हो। आशा है कि सर्वसाधारण इस पुस्तक को अपनाकर यथोचित लाभ उठावेंगे॥

५२, लूकरगंज, प्रयाग।
(अलाहाबाद)
माघ संवत् १९६८ विक्रमीय,
जनवरी १९१२ ईसवी।

क्षेमकरणदास त्रिवेदी।
(जन्म संवत् १९०५ विक्रमीय, स्थान शाहपुर मडराक ज़िला अलीगढ़)॥

हवनमन्त्र विषयसूची ॥

सङ्केताः ॥

अ०, अथर्व०=अथर्ववेद, काण्ड, सूक्त, मन्त्र ।
अव्य०=अव्यय ।
आ० प०=आत्मनेपदी ।
उ०=उणादिकोष, पाद, सूत्र (स्वामी दयानन्द सरस्वती संशोधित)।
ऋ०=ऋग्वेद, मण्डल, सूक्त, मन्त्र ।
क्रि०=क्रिया ।
त्रि०=त्रिलिङ्ग, विशेषण ।
न०=नपुंसकलिङ्ग ।
नि०, निरु०=निरुक्त (यास्कमुनिकृत)
निघ०=निघन्टु (यास्कमुनिकृत) ।
प० प०=परस्मैपदी ।
पा०=पाणिनीय अष्टाध्यायी, अध्याय, पाद, सूत्र ।
पु०=पुंलिङ्ग ।
पृषो०=पृषोदरादि ।
य०, यजुः=यजुर्वेद, अध्याय, मन्त्र।
सा० वे०=सामवेद ।
( ) इस कोष्ठ में मन्त्र के शब्द हैं ।
[ ] ऐसे कोष्ठ में शब्द व्याख्या सूचक हैं ।
०-??=अन्त के भाग में पूर्व भाग मिलाकर पूरा रूप करलो, जैसे अश्विना=०-नौ= अश्विनौ ।
———अधोरेखित शब्द, व्याख्या वा ऊपर से लाये हैं ।

———

हवनमन्त्रसूची ।

॥ इति ॥

ओ३म् ।

अथ हवनमन्त्राः ॥

१—अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाः ॥

ओ३म् ॥ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद् भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

यजुः० अ० ३० मं० ३ ॥ गायत्री, ८ अक्षर ×३ ॥

(देव) हे प्रकाशमय (सवितः) सर्वनियन्ता परमेश्वर! (विश्वानि) हमारे सब (दुरितानि) संकटों को (परा-सुव) दूर कर और (यत्) जो (भद्रम्) मङ्गल है (तत्) वह (नः) हमको (आ-सुव) प्राप्त करा ॥ १ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

यजुः० अ० १३ मं० ४ ॥ मन्त्र २—८, त्रिष्टुप्, ११×४ ॥

(हिरण्यगर्भः) तेजवाले पदार्थों का आधार, परमेश्वर (अग्रे) पहिले ही पहिले (सम्) ठीक ठीक (अवर्तत) वर्तमान था, वह (भूतस्य) संसार का (जातः) प्रसिद्ध (एकः) एक (पतिः) स्वामी (आसीत्) था । (सः) उसने (इमाम्) इस (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) प्रकाश को (दाधार) धारण किया था, हम सब (कस्मै = काय) उस प्रकाशमय प्रजापति (देवाय) परमेश्वर की (हविषा) भक्ति से (विधेम) सेवा किया करें ॥ २॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

य० २५ । १३ ॥

(यः) जो (आत्मदाः) प्राणदाता और (बलदाः) बलदाता है, (यस्य यस्य) जिसके ही (प्रशिषम्) उत्तम शासन को (विश्वे देवाः)

सब देवता (उपासते) मानते हैं। (अमृतम्) जीवन (यस्य) जिसकी (छाया) छाया [छाया समान अनुगामी] है, और (मृत्युः) मरण (यस्य) जिसकी [छाया समान्] है, हम सब (कस्मै देवाय) उस सुख स्वरूप परब्रह्म की (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) सेवा किया करें ॥३॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद् राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥
य० २३ । ३ ॥

(यः) जो (एकः इत्) एक ही (महित्वा) अपनी महिमा से (प्राणतः) श्वास लेने वाले, चेतन्य और (निमिषतः) आंखे मूंदे हुये, जड़ (जगतः) जगत् का (राजा) राजा (बभूव) हुआ था। (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) द्विपाये और (चतुष्पदः) चौपाये जीव समूह का (ईशे) ईश्वर था, हम सब (कस्मै देवाय) उस सुखस्वरूप परमेश्वर की (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) सेवा किया करें ॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥
य० ३२ । ६ ॥

(येन) जिस परमेश्वर करके (उग्रा) तेजस्वी (द्यौः) प्रकाशवान् सूर्य आदि लोक, (च) और (दृढा) दृढ (पृथिवी) विस्तीर्ण पृथिवी आदि लोक, और (येन) जिस करके (स्वः) सामान्य सुख (स्तभितम्) थांभा गया है और (येन) जिस करके (नाकः) विशेष सुख, मोक्ष, थांभा गया है। (यः) जो (अन्तरिक्षे) मध्यलोक वा आकाश में वर्तमान (रजसः) संसार का (विमानः) विमान रूप आधार है, हम सब (कस्मै देवाय) उस प्रकाशमय प्रजापति परमेश्वर की (हविषा) भक्ति के साथ (विधेम) सेवा किया करें ॥५॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥
ऋग्वेद मंडल १०। सूक्त १२१ मन्त्र १० ॥ य० २३ । ६५ ॥

(प्रजापते) हे प्रजापालक ! (त्वत्) तुझ से (अन्यः) दूसरा कोई (एतानि) इन और (ता = तानि) उन (विश्वा = ०–नि) सब (जातानि) उत्पन्न वस्तुओं में (परि) सब ओर से (न) नहीं (बभूव) व्याप्त था । (यत्कामाः) जिस पदार्थ की कामना वाले हम (ते) तुझ को (जुहुमः) स्वीकार करते हैं, (तत्) वह पदार्थ (नः) हमारे लिये (अस्तु) वर्तमान हो, (वयम्) हम (रयीणाम्) सब प्रकार के धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम्) रहें ॥ ६ ॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ ७ ॥

य० ३२।१०॥

(सः) वह (नः) हमारा (बन्धुः) बन्धु और (जनिता) उत्पन्न करनेहारा है, और (सः) वही (विधाता) पोषण करनेहारा परमेश्वर (विश्वा = विश्वानि) सब (धामानि) स्थानों अर्थात् नाम, शरीर और जन्मों को और (भुवनानि) लोकों को (वेद) जानता है । (यत्र) जिस (तृतीये) तीसरे (धामन् = ०–नि) लोक परब्रह्म में (देवाः) विद्वान् जन (अमृतम्) अमरपन को (आनशानाः) भोगते हुये (अधि) ऊपर (ऐरयन्त) पहुंचे हैं ॥ ७ ॥

सूचना—(तृतीये धामन्) तीसरे लोक अर्थात् परब्रह्म में, जो हम जीवों और सब भुवनों का स्वामी तीसरा है जैसा कि इस मन्त्र में वर्णन है ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥८॥

य० ४० । १६ ॥

(अग्ने) हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! (सुपथा) उत्तम मार्ग से (राये) धन के लिये (अस्मान्) हम को (नय) लेचल, (देव) हे प्रकाशमय ! तू (विश्वानि) सब (वयुनानि) कर्मों का विद्वान् जानने वाला है । (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिल (एनः) पाप को (युयोधि) अलग रख, (ते) तेरे लिये (भूयिष्ठाम्) बहुत बहुत (नम उक्तिम्) नमस्कार कथन (विधेम) हम करेंगे ॥ ८ ॥

इतीश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाप्रकरणम् ॥

२–अथ स्वस्तिवाचनम् (आशीर्वाद)

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म् ।
होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ॥ १ ॥

ऋ० १ । १ । १ ॥ म० १, २ गायत्री ८×३ ॥

(अग्निम्) ज्ञानमय परमेश्वर की (ईडे) मैं स्तुति करता हूं, जो परमेश्वर (पुरोहितम्) सब का अगुआ (यज्ञस्य) श्रेष्ठ कर्म का (देवम्) प्रकाशक, (ऋत्विजम्) सब ऋतुओं में पूजनीय, (होतारम्) दान करने हारा और (रत्नधातमम्) अत्यन्त रत्नों को धारण करने वाला है ॥ १ ॥

स नः॑ पि॒तेव॑ सू॒नवेऽग्ने॑ सूपाय॒नो भ॑व ।
सच॑स्वा नः स्व॒स्तये॑ ॥ २ ॥

ऋ० १ । १ । ९ ॥

(सः) सो तू (अग्ने) हे परमेश्वर ! (नः) हमारे लिये (सूपा-यनः = सु + उप + अयनः) उत्तम ज्ञान दाता (भव) हो, (इव) जैसे (पिता) पिता (सूनवे) पुत्र के लिये होता है । (नः) हम को (स्वस्तये) आनन्द पाने के लिये (सचस्व) तू सींच ॥ २ ॥

स्व॒स्ति नो॑ मिमीताम॒श्विना॒ भगः॑ स्व॒स्ति दे॒व्यदि॑तिरन॒र्वणः॑ ।
स्व॒स्ति पू॒षा असु॑रो दधातु नः स्व॒स्ति द्यावा॑पृथि॒वी सु॑चे॒तुना॑॥३॥

ऋ० ५ । ५१ । ११ ॥ म० ३–५ त्रिष्टुप् ११×४ ॥

(भगः) सेवा योग्य वा भगवान्, परमेश्वर (नः) हमारे (अ-श्विना = ०—नौ) दिन और रात को (स्वस्ति) आनन्द युक्त (मिमी-ताम्) करे, (देवी) दिव्य गुणवाली (अदितिः) अदीन देवमाता वेद विद्या वा भूमि] (अनर्वणः) अज्ञान वा आलस्य से हटाकर (स्वस्ति) आनन्दप्रद होवे (पूषा) पुष्टि करने वाला (असुरः) मेह (नः) हमें (स्वस्ति) आनन्द (दधातु) देवे, (द्यावापृथिवी) प्रकाश

और भूमि (सुचेतुना) उत्तम ज्ञान के साथ (स्वस्ति) आनन्दप्रद, होवें ॥ ३ ॥

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहे सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥४॥
ऋ० ५ । ५१ । १२ ॥

(स्वस्तये) आनन्द के लिये (वायुम्) वेगवान् परमेश्वर का (उप) अधिक अधिक (ब्रवामहै) हम कथन करें, और (स्वस्ति) आनन्द के लिये (सोमम्) बड़े ऐश्वर्यवाले परमात्मा का कथन करें, (यः) जो (भुवनस्य) जगत् का (पतिः) पति है। (स्वस्तये) आनन्द के लिये (बृहस्पतिम्) बड़े बड़े ब्रह्माण्डों वा वेदवाणी के रक्षक (सर्वगणम्) सब की गिनती करने वाले ईश्वर का कथन करें, (आदित्यासः = ०–त्याः) अदिति [विद विद्या वा धरती माता] के पुत्र [बड़े विद्वान् भक्त शूरवीर लोग] (नः स्वस्तये) हमारे आनन्द के लिये (भवन्तु) वर्तमान हों ॥४॥

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥ ५ ॥
ऋ० ५ । ५१ । १३ ॥

(अद्य) आज (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य पदार्थ (नः) हमारे (स्वस्तये) सुख के लिये वर्तमान हों, (वैश्वानरः) सब नरों का हितकारी (वसुः) अति श्रेष्ठ (अग्निः) ज्ञान स्वरूप परमेश्वर (नः स्वस्तये) हमारे सुख के लिये वर्तमान हो। (देवाः) विजयी (ऋभवः) बुद्धिमान् लोग (स्वस्तये) आनन्द के लिये (अवन्तु) रक्षा करें, (रुद्रः) ज्ञानदाता आचार्य (स्वस्ति) सुख के लिये (अंहसः) पाप से (नः) हमारी (पातु) रक्षा करे ॥५॥

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥६॥
ऋ० ५ । ५१ । १४ ॥ म० ६—७ अनुष्टुप् ८×४ ॥

(मित्रावरुणा = ०—णौ) हे दिन और रात ! हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण हो, (रेवति) हे धनयुक्त (पथ्ये) पथ्या=बड़े मार्ग (स्वस्ति) हमारे लिये कल्याण हो । (इन्द्रः) वायु (च) और (अग्निः) आग (नः) हमें (स्वस्ति) सुखदायक हों, (अदिते) हे अखंडव्रत परमेश्वर! (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) आनन्द (कृधि) कर ॥ ६ ॥

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥ ७ ॥

ऋ० ५ । ५१ । १५ ॥

(स्वस्ति) कल्याणयुक्त (पन्थाम् = ०—नम्, मार्ग पर (अनुचरेम) हम चलते रहें, (इव) जैसे (सूर्य्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्रमा चलते हैं । (पुनः) फिर (ददता) दानी, (अघ्नता) अहिंसाकारी और (जानता) विज्ञानी पुरुष परमात्मा से (संगमेमहि) हम मिलें ॥ ७ ॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥८॥

ऋ० ७ । ३५ । १५ ॥ त्रिष्टुप् ॥

(ये) जो महात्मा (देवानाम्) विद्वानों में (यज्ञियाः) पूजनीय हैं, और जो (यज्ञियानाम्) पूजनीय पुरुषों में (मनोः) ज्ञान के (यजत्राः) देने हारे, (अमृताः) अमर [कीर्तिवाले] और (ऋतज्ञाः) धर्म के जानने हारे हैं । (ते) वे (अद्य) आज (नः) हम को (उरुगायम्) उत्तम ज्ञान का (रासन्ताम्) उपदेश करें । (यूयम्) तुम सब (स्वस्तिभिः) अनेक सुखों से (सदा) सदा (नः) हमारी (पात) रक्षा करो ॥ ८ ॥

येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ।
उक्थशुष्मान् वृषभरान् त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये ॥९॥

ऋ० १० । ६३ । ३ ॥ म० ९ —२१ जगती छन्दः १२ × ४ ॥

(येभ्यः) जिन विद्वानों के लिये (द्यौः) प्रकाशवाली (अद्रिबर्हाः) मेघ सदृश दानशीला, (अदितिः माता) अखण्ड, वेदविद्या वा धरती

माता (मधुमत्) अति मधुर (पीयूषम्) अमृत और (पयः) दूध को (पिन्वते) सींचती है । (उक्थ-शुष्मान्) उत्तम बल वाले, (वृषभरान्) श्रेष्ठों के पोषण करने हारे, (स्वप्नसः) सुकर्मी, (तान्) उन (आदित्यान्) अदिति के पुत्रों [महाविद्वानों] के (अनु) पीछे पीछे (स्वस्तये) आनन्द के लिये (मदा = मद) तू प्रसन्न हो ॥ ९ ॥

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥१०॥
ऋ० १० । ६३ । ४ ॥

(नृचक्षसः) मनुष्यों पर दृष्टि रखने हारे, (अनिमिषन्तः) आंखें न मींचने हारे, (देवासः=०-वाः) ब्रह्मज्ञानियों ने (अर्हणा=०-णया) अपनी योग्यता से (बृहत्) बड़ा (अमृतत्वम्) अमरपन [स्थिर यश वा मोक्ष] (आनशुः) पाया था । (ज्योतीरथाः) ज्योतिर्मय रथ वाले, (अहिमायाः) अनष्ट बुद्धि वाले, (अनागसः) निर्दोषी पुरुष (दिवः) विजय वा स्वर्ग के (वर्ष्माणम्) ऊंचे देश में (स्वस्तये) सब के आनन्द के लिये (वसते) छाये रहते हैं ॥ १० ॥

सूचना – (ज्योतीरथाः) वह शिल्पी विश्वकर्मा विद्वान् लोग जो प्रकाश द्वारा भूमिरथ, नौका, विमान आदि रथों को चलाते हैं । अथवा, वह योगीश्वर जिनका "रथ" अर्थात् शरीर विज्ञान से प्रकाश मय है ॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् ।
ताँआ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ॥११॥
ऋ० १० । ६३ । ५ ॥

(ये) जिन (सुवृधः) बड़ी वृद्धि वाले (सम्राजः) चक्रवर्ती राजाओं ने (यज्ञम्) पूजास्थान (आ-ययुः) पाया था, और जिन (अ-परि-ह्वृताः) हार न मानने वाले वीरों ने (दिवि) स्वर्ग लोक में (क्षयम्) घर को (दधिरे) बनाया था । (तान्) उन (महः) प्रतापी (आदित्यान्) अदिति [देवमाता] के पुत्रों की, और (अदितिम्) अदीना देवमाता [विद्या देवी वा धरती माता] की, (नमसा) झुक कर (सुवृक्तिभिः) ठीक ठीक

आत्मत्यागों से (स्वस्तये) सुख के लिये, (आ) यथाविधि (विवास) तू सेवा कर ॥११॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यति ष्ठन ।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥१२॥
ऋ० १० । ६३ । ६ ॥

(विश्वे) हे सब (देवासः=०-वाः) विजयी (मनुषः) मननशील, मनुष्यो (यति) जितने (स्थन=स्थ) तुम हो, (वः) उन तुम को (स्तोमम्) वह स्तुति, (यम्) जिसका (जुजोषथ) तुम सेवन करते हो, (कः) प्रजापति परमेश्वर (राधति) सिद्ध करता है। (तुविजाताः) हे बड़े जन्म वाले! (कः) सुखस्वरूप ईश्वर (वः) तुम्हारे (अध्वरम्) हिंसा रहित यज्ञ को (अरम्-करत्) पूरा करे (यः) जो यज्ञ (अंहः) पाप को (अति= अतीत्य) लांघ कर (स्वस्तये) आनन्द के लिये (नः) हमें (पर्षत्) पार लगावे ॥१२॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः ।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥१३॥
ऋ० १० । ६३ । ७ ॥

(येभ्यः) जिन तुम विद्वानों के लिये (समिद्धाग्निः) सूर्य आदि तेज के प्रकाशक (मनुः) ज्ञानवान् परमेश्वर ने (मनसा) मन के साथ और (सप्तहोतृभिः) सात हवन करने वालों के साथ [जो, शिर के सात गोलक हैं] (प्रथमाम्) पहिली (होत्राम्) वेद वाणी को (आ) यथाविधि (येजे) दिया था, (ते) वे तुम (आदित्याः) हे अदितिपुत्रो, महा विद्वान् वीर पुरुषो! (अभयम्) निर्भय (शर्म) शरण का (यच्छत) दान करो, (नः) हमारे (सुपथा=०-थानि) सुन्दर मार्गों को (स्वस्तये) आनन्द के लिये (सुगा=०-गानि) सुगम (कर्त) करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—ऐतिहासिक पूर्वज वेदानुयायियों के मार्ग पर हमें चलना चाहिये ॥

सूचना—(सप्तहोतृभिः) की विशेष व्याख्या शब्द संग्रह में देखो ॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्य्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥
ऋ० १० । ६३ । ८ ॥

(ये) जो (प्रचेतसः) बड़े विद्वान् (मन्तवः) मननशील, मनुष्य (भुवनस्य) संसार के (विश्वस्य) सब (स्थातुः) स्थावर [घर, वृक्ष, राज्य, पहाड़ आदि] (च) और (जगतः) जंगम [मनुष्य, गौ, घोड़ा, हाथी आदि] पदार्थ के (ईशिरे) राजा हुये थे। (ते) वे तुम (देवासः=०-वाः) हे विद्वान् जनो ! (नः) हम को (कृतात्) किये हुये [अर्थात् शारीरिक] और (अकृतात्) न किये हुये [अर्थात् मानसिक] (एनसः) पाप से (परि) हटा कर (अद्य) आज (स्वस्तये) आनन्द के लिये (पिपृता=०-त) पालो ॥ १४ ॥ अर्थात् ऐतिहासिक पूर्वज महात्माओं का अनुकरण कर के हम पापों से बचें ॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥१५॥
ऋ० १० । ६३ । ९ ॥

(भरेषु) संग्रामों में (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यवाले (सुहवम्) सहज में पुकार सुनने हारे, (अंहोमुचम्) पाप से छुड़ाने हारे, (सुकृतम्) सुकर्मी, (दैव्यम्) विद्वान् जनों के हितकारी (जनम्) सर्वजनक, परमेश्वर को, (अग्निम्) भौतिक अग्नि, (मित्रम्) वायु, (वरुणम्) जल, (भगम्) ऐश्वर्य, (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि और (मरुतः) शूरवीर विद्वानों को (स्वस्तये) आनन्द के लिये (हवामहे) हम बुलाते हैं ॥ १५ ॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥ १६ ॥
ऋ० १० । ६३ । १० ॥ य० २१। ६ ॥ अथर्व० ७ । ६ । ३ ॥

(सुत्रामाणम्) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारी, (पृथिवीम्) फैली हुई, (द्याम्) प्रकाश वाली, (अनेहसम्) अखण्डित, (सुशर्माणम्)

अत्यन्त सुख देनेहारी, (सु-प्र-नीतिम्) बहुत सुन्दर नीतिवाली (अदितिम्) वेदविद्यारूप, (दैवीम्) विद्वानों की बनायी हुई, (स्वरित्राम्=सु-अरित्राम्) सुन्दर बल्लियों वाली, (अनागसम्) निर्दोष, (अस्रवन्तीम्) न चूने वाली, (नावम्) नाव पर (स्वस्तये) आनन्द के लिये (आरुहेम) हम चढ़ें ॥ १६ ॥

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः ।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥१७॥
ऋ० १० । ६३ । ११ ॥

(विश्वे) हे सब (यजत्राः) पूजनीय महात्माओ ! (ऊतये) रक्षा के लिये (अधि) अधिकार से (वोचत=अवोचत) तुमने वचन दिया है । (अभिह्रुतः) बड़ी कुटिल (दुरेवायाः) दुर्गति से (नः) हमें (त्रायध्वम्) तुम बचाओ । (देवाः) हे विद्वान् जनो ! (शृण्वतः) टेर सुननेवाले (वः) तुम को (अवसे) रक्षा और (स्वस्तये) कुशल के लिये (सत्यया) सत्य सत्य (देवहूत्या) देवताओं के योग्य आवाहन से (हुवेम) हम बुलावें ॥१७॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥ १८ ॥
ऋ० १० । ६३ । १२ ॥

(अमीवाम्) पीड़ा को (अप=अप युयोतन) तुम अलग हटाओ, (विश्वाम्) सब प्रकार के (अनाहुतिम्) खोटे दान को (अप) हटाओ, (अघायतः) बुरा चीतने वाले शत्रु की (अरातिम्) शत्रुता और (दुर्विदत्राम्) कुमति को (अप) हटाओ । (देवाः) हे विद्वान जनो ! (द्वेषः) वैर को (अस्मत्) हम से (आरे) दूर (युयोतन=युयुत) हटाओ, (नः) हमें (स्वस्तये) आनन्द भोगने के लिये (उरु) बड़ी (शर्म) शरण का (यच्छत) दान करो ॥ १८ ॥

अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥१९॥
ऋ० १० । ६३ । १३ ॥

(सः) वह (विश्वः) प्रत्येक (मर्त्तः) मनुष्य (अरिष्टः) हार न मानता हुआ (एधते) बढ़ता है, और वह (प्रजाभिः) प्रजाओं के साथ (धर्मणः परि) धर्म में लगा हुआ (प्रजायते) फैलता है । (यम्) जिस मनुष्य को (आदित्यासः=०-त्याः) हे विद्या देवी के पुत्रो ! (सुनीतिभिः) सुन्दर सुन्दर नीतियों से (विश्वानि) सब (दुरिता=०-तानि) संकटों को (अति) लांघ कर (स्वस्तये) आनन्द के लिये (नयथा=०-थ) तुम ले चलते हो ॥ १९ ॥

यं दे॒वा॒सोऽव॑थ॒ वाज॑सातौ॒ यं शूर॑साता मरुतो हि॒ते धने॑ ।
प्रा॒त॒र्यावा॑णं॒ रथ॑मिन्द्रसान॒सिम॑रिष्यन्त॒मा रु॑हेमा स्व॒स्तये॑ ॥२०॥
१ साति (स्त्रीलिं)=प्राप्तिः दानं । वाज (पुंनं)=घृतं = अन्नम् ऋ० १० । ६३ । १४ ॥

(देवासः=०-वाः) हे विद्वान् जनो ! (यम्) जिस रथ की (वाजसातौ) अन्न के लाभस्थल वा रण में, और (मरुतः) हे शूरवीर देवताओ ! (यम्) जिस रथ की (शूरसाता=०-तौ) शूरों की लाभ भूमि वा संग्राम में (हिते धने) इष्ट धन के निमित्त (अवथ) तुम रक्षा करते हो । उस (प्रातर्यावानम्) सदा उत्तम गति से चलने वाले, (इन्द्र-सानसिम्) परम ऐश्वर्यवालों से सेवनीय (अरिष्यन्तम्) अटूट (रथम्) रथ पर (स्वस्तये) आनन्द के लिये (आरुहेम) हम चढ़ें ॥ २० ॥

सूचना - हमने (इन्द्रसानसिम्) एक पद मान कर अर्थ किया है । पदपाठ में (इन्द्र) शब्द का पाठ अलग है, वह असाधु दीखता है, क्योंकि पूर्वार्ध में (देवासः, मरुतः) बहुवाचनान्त शब्दों से रथ का सम्बन्ध है ॥

स्व॒स्ति नः॑ प॒थ्या॑सु॒ धन्व॑सु स्व॒स्त्य१॒॑प्सु वृ॒जने॒ स्व॑र्वति ।
स्व॒स्ति नः॑ पुत्रकृ॒थेषु॒ योनि॑षु स्व॒स्ति रा॒ये म॑रुतो दधातन ॥२१॥
दधातन = धत्त (लोट्) तप्तनप्तनथनाश्च ७।१।४५ पाणि० (लोण्मध्यमपुरुष प्रत्ययस्य) ऋ० १० । ६३ । १५ ॥

(नः) हमारे लिये (पथ्यासु) राजमार्गों में और (धन्वसु) निर्जल स्थलों में (स्वस्ति) कुशल हो, (अप्सु) जल में और (स्वर्वति) स्वर्गदायक (वृजने) संग्राम में (स्वस्ति) कुशल हो । (नः) हमारे लिये (पुत्रकृथेषु) पुत्रों के कर्मों से युक्त (योनिषु) घरों में (स्वस्ति) कुशल हो, (मरुतः) हे

वृजनम् = स्वच्छीकृत गोचर भूमिः (A field cleared for pasture)

शूरवीरो ! (राये) धन के लिये (स्वस्ति) आनन्द का (दधातन=०–त) दान करो ॥ २१ ॥

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति ।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥२२॥
ऋ० १० । ६३ । १६ ॥ त्रिष्टुप् ॥

(या) जो (श्रेष्ठा) उत्तम गुण वाली (रेक्णस्वती) बहुत सुवर्ण वाली (स्वस्ति) समृद्धि (इत्) अवश्य (हि) ही (प्रपथे) राजपथ [के समान वेद मार्ग] में (वामम् अभि) लाभ के लिये (एति) चली आती है । (सा) वह समृद्धि (नः) हमें (अमा) घर में (सो=सा उ) वही (अरणे=अरण्ये) बन में (निपातु) पालती रहे, और वही (देवगोपा) विद्वान् जनों से रक्षित होकर (स्वावेशा) सुन्दर निवास देने हारी (भवतु) हो ॥ २२ ॥

इषे त्वोर्जे त्वा वायवः स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ २३ ॥

"इषेत्वा-भागं" स्वराड्बृहती छन्द और शेष ब्राह्म्युष्णिक् छन्द ॥
यजु० १ ॥ १ ॥

इषे । त्वा । ऊर्जे । त्वा । वायवः । स्थ । देवः । वः । सविता । प्र । अर्पयतु । श्रेष्ठ-तमाय । कर्मणे । आ । प्यायध्वम् । अघ्न्याः । इन्द्राय । भागम् । प्रजा-वती । अन्-अमीवाः । अ-यक्ष्माः । मा । वः । स्तेनः । ईशत । मा । अघ-शंसः । ध्रुवाः । अस्मिन् । गो-पतौ । स्यात । बह्वीः । यजमानस्य । पशून् । पाहि ॥ २३ ॥

१–हे प्रजागण ! मैं (त्वा) तुझ में (इषे) व्यापक हूं, मैं (त्वा) तुझ को (ऊर्जे) बलवान् बनाता हूं ।

२–हे प्रजाओ ! (वायवः) तुम सब वेगवान् (स्थ) हो, (देवः) प्रकाशमय (सविता) सब का चलाने वाला परमेश्वर (वः) तुम सब को

(श्रेष्ठतमाय) अधिक अधिक श्रेष्ठ (कर्मणे) कर्म के लिये (प्र+अर्पयतु) आगे बढ़ावे ।

३-(अघ्न्याः) हे अवध्य वा अहिंसक प्रजाओ! (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिये (भागम्) अपने भाग को (आ) भली भांति (प्यायध्वम्) तुम बढ़ाओ, (प्रजावतीः=०-त्यः) हे उत्तम सन्तान वाली, (अनमीवाः) मानसिक पीड़ा से रहित, और (अयक्ष्माः) क्षय आदि शारीरिक रोग से रहित प्रजाओ ! (स्तेनः) चोर डाकू (वः) तुम पर (मा ईशत) राज्य न कर सके, और (मा अघशंसः) न कोई पाप-चिन्तक राज्य कर सके। और तुम (ध्रुवाः) निश्चलचित्त और (बह्वीः=०-ह्व्यः) बहुत सी होकर (अस्मिन्) इस (गोपतौ) स्वर्ग वा पृथिवी वा गौ आदि के रक्षक परमेश्वर में (स्यात) वर्तमान् रहो ।

४-हे प्रजागण ! (यजमानस्य) यज्ञ कर्ता धर्मात्मा पुरुष के (पशून्) दोपाये और चौपाये जीवों की (पाहि) तू रक्षा कर ॥ २३ ॥

सूचना-यह मन्त्र ईश्वर कथन प्रजाओं के प्रति है ॥

आ नो भुद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा सद्मिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे॥२४॥

य० । २५ । १४ ॥ ऋ० १ । ८९ । १ ॥ म० २४-२६ जगती, १२×४ ॥

(नः) हमारे (भद्राः) शुभ (क्रतवः) विचार वा कर्म (विश्वतः) सब ओर से (अदब्धासः=०-ब्धाः) बेचूक और (अपरीतासः=०-ताः) बेरोक (उद्भिदः) ऊपर चढ़ते हुये (आयन्तु) चले आवें । (यथा) जिससे कि (देवाः) सब देवता (सदम्) सदा (इत्) ही (नः) हमारी (वृधे) वृद्धि के लिये (अप्रायुवः) बे भूल (रक्षितारः) रक्षा करने वाले (दिवे दिवे) प्रति दिन (असन्) बने रहें ॥२४॥

देवानां भुद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो निवर्त्तताम्। देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे॥२५॥

य० २५ । १५ ॥ ऋ० १ । ८९ । २ ॥

(ऋजुयताम्) सरल स्वभाव वाले (देवानाम्) विद्वान् जनों की (भद्रा) मङ्गल करने हारी (सुमतिः) सुमति, और (देवानाम्) देवताओं की (रातिः) उदारता (नः अभि) हमारी ओर (नि वर्तताम्) सदा चली आवे। (देवानाम्) देवताओं की (सख्यम्) मित्रता (वयम्) हमने (उप सेदिमा=०-म) पाई है, (देवाः) सब देवता (नः) हमारी (आयुः) आयु को (जीवसे) भोगने के लिये (प्रतिरन्तु) बढ़ावें ॥ २५ ॥

तमीशा॑नं॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ धियंजि॒न्वमव॑से हूमहे व॒यम् ।
पू॒षा नो॒ यथा॒ वेद॑सा॒मस॑द्वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धः स्व॒स्तये॑ ॥२६॥

य० २५ । १८ ॥ ऋ० १ । ८९ । ५ ॥

(जगतः) जंगम [जैसे मनुष्य, गौ, घोड़ा, हाथी आदि] और (तस्थुषः) स्थावर [जैसे घर, भूमि, राज्य आदि] के (पति) स्वामी (धियंजिन्वम्) बुद्धि के तृप्त करने हारे (तम्) उस (ईशानम्) परमेश्वर को (अवसे) रक्षा के लिये (वयम्) हम (हूमहे) पुकारते हैं। (यथा) जिससे कि (पूषा) वह पोषक परमेश्वर (नः) हमारे (वेदसाम्) ज्ञानों वा धनों की (वृधे) बढ़ती और (स्वस्तये) समृद्धि के लिये (अदब्धः) अचूक (रक्षिता) रक्षक और (पायुः) पालक (असत्) बना रहे ॥ २६ ॥

स्व॒स्ति न॒ इन्द्रो॑ वृ॒द्धश्र॑वाः स्व॒स्ति नः॑ पू॒षा वि॒श्ववे॑दाः ।
स्व॒स्ति न॒स्तार्क्ष्यो॒ अरि॑ष्टनेमिः स्व॒स्ति नो॒ बृह॒स्पति॑र्दधातु ॥२७॥

य० २५ । १९ ॥ ऋ० १ । ८९ । ६ ॥ विराट्स्थाना छन्द, त्रिष्टुप् का भेद, २×९+१०+११=३९ ॥

(वृद्धश्रवाः) बहुत सुननेवाला वा बड़ी कीर्तिवाला (इन्द्रः) परमेश्वर (नः) हमें (स्वस्ति) सुखदायक हो, (विश्ववेदाः) सर्वधनी (पूषा) पोषण करने हारा परमेश्वर (नः) हमें (स्वस्ति) सुखदायक हो। (तार्क्ष्यः) महावेगवान् (अरिष्टनेमिः) अटूट वज्र वाला ईश्वर (नः) हमें (स्वस्ति) सुखदायक हो, (बृहस्पतिः) बड़े बड़ों का रक्षक ईश्वर (नः) हमें (स्वस्ति) आनन्द (दधातु) देवे ॥ २७ ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२८॥
य० २५ । २१ ॥ ऋ० १ । ८९ । ८ ॥ त्रिष्टुप् ११×४ ॥

(देवाः) हे विद्वान् जनो ! (कर्णेभिः=कर्णैः) कानों से हम (भद्रम्) शुभ (शृणुयाम) सुनते रहें, (यजत्राः) हे पूज्य महात्माओ ! (अक्षभिः) आंखों से हम (भद्रम्) शुभ (पश्येम) देखते रहें । (स्थिरैः) दृढ़ (अङ्गैः) अङ्गों और (तनूभिः) शरीरों से (तुष्टुवांसः) स्तुति करते हुये हम लोग (यत्) जो (देवहितम्) विद्वानों का हितकारक (आयुः) जीवन है उसको (वि-अशेमहि) हम पावें ॥ २८ ॥

भावार्थ–मनुष्य विद्वानों के सत्संग से ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय और मननशील होकर शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करके संसार में अपनी कीर्त्ति फैलावें ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
१ र २र ३ १ २
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ २९ ॥
सा० वे० छन्द आ० प्रपा० १ म० १ ॥ गायत्री ॥

(अग्ने) हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर ! (वीतये) ज्ञान के लिये और (हव्यदातये) भोजन की शुद्धि के लिये (गृणानः) उपदेश करता हुआ (आ याहि) तू आ । (होता) तू दानी होकर (बर्हिषि) यज्ञ में (नि सत्सि=सीदसि) सदा बैठता है ॥ २९ ॥

१२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
त्वमग्ने यज्ञानाꣳ होता विश्वेषाꣳहितः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
देवेभिर्मानुषे जने ॥ ३० ॥
सा० वे० छन्द आ० प्रपा० १ म० २ ॥ ऋ० ६ । १६ । १ ॥ गायत्री ॥

(अग्ने) हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर ! (त्वम्) तू (यज्ञानाम्) श्रेष्ठ कर्मों का (होता) दाता और (देवेभिः=०–वैः) इन्द्रियों द्वारा (मानुषे जने) मानुष लोक में (विश्वेषाम्) सब का (हितः) हितकारी है ॥ ३० ॥

ये त्रि॒ष॒प्ताः प॑रि॒ यन्ति॒ विश्वा॑ रू॒पाणि॒ बिभ्र॑तः ।
वा॒चस्पति॒र्बला॒ तेषां॑ त॒न्वो॑ अ॒द्य द॑धातु मे ॥ ३१ ॥

अथर्ववेद काण्ड १ सूक्त १ मन्त्र १ ॥ अनुष्टुप्छन्द ८×४ ॥

(ये) जो (त्रि-सप्ताः) १-सब के संतारक, रक्षक परमेश्वर सम्बन्धी, यद्वा, २-रक्षणीय जगत् सम्बन्धी पदार्थ [यद्वा, तीन से सम्बन्धी । ३-तीनों काल, भूत, वर्तमान और भविष्यत् से । ४-तीनों लोक, स्वर्ग, मध्य और भू लोक से । ५-सत्व, रज और तम, तीनों गुणों से । ६-ईश्वर, जीव और प्रकृति, इन तीनों से सम्बन्धी पदार्थ ॥ यद्वा, तीन और सात=दश । ७-चार दिशा, चार विदिशा, एक ऊपर की और एक नीचे की दिशाओं के पदार्थ । ८-पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय ॥ यद्वा, तीन गुणित सात=इक्कीस । ९-महाभूत ५+प्राण ५+ज्ञानेन्द्रिय ५+कर्मेन्द्रिय ५+अन्तःकरण १, यह इक्कीस पदार्थ] (विश्वा=विश्वानि) सब (रूपाणि) वस्तुओं को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (परि यन्ति) सब ओर व्याप्त हैं । (वाचः पतिः) वेदवाणी का स्वामी परमेश्वर (तेषाम्) उनके (तन्वः) शरीर के (बला=बलानि) बलों को (अद्य) आज (मे) मेरे लिये (दधातु) धारण करे ॥

भावार्थ—सब मनुष्य तृण से लेकर ईश्वर पर्यन्त ज्ञान प्राप्त करें और पराक्रमी और परोपकारी होकर आनन्द भोगें ॥

इति स्वस्तिवाचनम् ॥

३-अथ शान्तिकरणम् ॥

शं न॑ इन्द्रा॒ग्नी भ॑वता॒मवो॑भिः॒ शं न॒ इन्द्रा॒वरु॑णा रा॒तह॑व्या ।
शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शं योः शं न॒ इन्द्रा॑पू॒षणा॒ वाज॑सातौ ॥१॥

मन्त्र १-१३ ऋग्वेद ७।३५।१-१३॥ १-१० अथर्व० का० १९।१०।१-१० ॥
११-१३, अ० का० १९।११।२,१,३ ॥ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १६ देखो ॥

(इन्द्राग्नी) बिजुली और भौतिक अग्नि दोनों (अवोभिः) रक्षा सामग्री से (नः) हमें (शम्) सुखकारक (भवताम्) हों, (रातहव्या=०-व्यौ) ग्राह्य पदार्थों के देने हारे (इन्द्रावरुणा=०-णौ) बिजुली और जल (नः) हमें (शम्) सुखकारी हों। (शम्) सुखदायक (इन्द्रासोमा=०-मौ) सूर्य और चन्द्रमा (सुविताय) उत्तम धन के लिये (शम्) रोग नाशक और (योः) भय निवर्तक हों, (इन्द्रापूषणा=०-णौ) बिजुली और पवन (वाजसातौ) पराक्रम के लाभ स्थान वा संग्राम में (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों ॥ १ ॥

सूचना-मन्त्र १६ सूचना २ देखो ॥

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥

(नः) हमारा (भगः) ऐश्वर्य (शम्) शान्तिदायक हो, (उ) और (नः) हमारा (शंसः) कथन (शम्) शान्तिदायक हो, (नः) हमारी (पुरन्धिः) बस्तियों की बसाने हारी, बुद्धि (शम्) शान्तिदायक हो, (उ) और (रायः) सब प्रकार के धन (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) हों। (नः) हमारा (सत्यस्य) सत्य सत्य (सुयमस्य) सुन्दर नियम का (शंसः) शासन (शम्) शान्तिदायक हो, (नः) हमारा (पुरुजातः) बहुत प्रसिद्ध (अर्यमा) श्रेष्ठों का मान करनेहारा, न्यायकारी भगवान् (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो ॥ २ ॥

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥

(धाता) सर्वपोषक परमात्मा (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक हो, (उ) और (धर्ता) धारण करने वाला ईश्वर (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक हो, (उरूची) बहुत फैली हुई दिशा (नः) हमें (स्वधाभिः) बहुत अन्नों से (शम्) शान्तिकारक (भवतु) हो। (बृहती=०-त्यौ) बहुत विस्तार वाले (रोदसी=०-स्यौ) भूमि और सूर्य दोनों (शम्) शान्तिकारक हों, (अद्रिः) मेघ वा पहाड़ (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक हो, (देवा-

नाम्) विद्वान् जनों के (सुहवानि) सुन्दर बुलावे (नः) हमें (शम्) शान्तिकारक (सन्तु) हों ॥ ३ ॥

शं नो॑ अ॒ग्निर्ज्योति॑रनीको अस्तु॒ शं नो॑ मि॒त्रावरु॑णाव॒श्विना॒ शम् ।
शं नः॑ सु॒कृतां॑ सुकृ॒तानि॑ सन्तु॒ शं न॑ इषि॒रो अ॒भि वा॑तु॒ वातः॑ ॥४॥

(ज्योतिरनीकः) ज्योतियों का जीवनदाता (अग्निः) ज्ञान स्वरूप परमेश्वर (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिकारक (अस्तु) हो, (मित्रावरुणौ) दिन और रात (नः) हमारे लिये (शम्) शन्तिकारक हों, (अश्विना=०-नौ) सूर्य और चन्द्रमा (शम्) शान्तिकारक हों, (सुकृताम्) सुकर्मियों के (सुकृतानि) सुकर्म (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिकारक (सन्तु) हों, (इषिरः) गतिशील (वातः) पवन (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिकारक (अभि) चारों ओर (वातु) चले ॥ ४ ॥

शं नो॒ द्यावा॑पृथि॒वी पू॒र्वहू॑तौ॒ शम॒न्तरि॑क्षं दृ॒शये॑ नो अस्तु ।
शं न॒ ओष॑धीर्व॒निनो॑ भवन्तु॒ शं नो॒ रज॑स॒स्पति॑रस्तु जि॒ष्णुः ॥५॥

(पूर्वहूतौ) पहिले बुलावे अर्थात् कार्य के आरम्भ में (द्यावापृथिवी =०-व्यौ) सूर्य और भूमि (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिदायक हों और (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक [सर्वमध्यवर्ती आकर्षण धर्म] (नः) हमारी (दृशये) दृष्टि के लिये (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो । (ओषधीः=०-धयः,०-ध्यः) ओषधियां अन्नादि और (वनिनः) वृक्ष (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) हों, (रजसः) जगत् का (पतिः) स्वामी (जिष्णुः) जयशील परमेश्वर (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो ॥ ५ ॥

शं न॒ इन्द्रो॒ वसु॑भिर्दे॒वो अ॑स्तु॒ शमा॑दि॒त्येभि॒र्वरु॑णः सु॒शंसः॑ ।
शं नो॑ रु॒द्रो रु॒द्रेभि॒र्जला॑षः॒ शं न॒स्त्वष्टा॒ ग्नाभि॑रि॒ह शृ॑णोतु ॥६॥

(देवः) प्रकाशमय (इन्द्रः) सूर्य (वसुभिः) अनेक धनों वा किरणों से (नः) हमें (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो, (सुशंसः=सु+शंसः) उत्तम गुण वाला (वरुणः) जल (आदित्येभिः=०-त्यैः) सूर्य की किरणों के साथ (शम्) सुखदायक हो । (जलाषः) जीवों की अभिलाषा पूरी करनेहारा

(रुद्रः) ज्ञानदाता आचार्य (रुद्रेभिः=रुद्रैः) ज्ञानदाता मुनियों के द्वारा (नः) हमें (शम्) सुखदायक हो। (शम्) सुखदायक (त्वष्टा) विश्वकर्मा परमेश्वर (ग्नाभिः) हमारी वाणियों के द्वारा (इह) यहां पर (नः) हमारी (शृणोतु) सुने ॥ ६ ॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥

(सोमः) परम ऐश्वर्य वाला ईश्वर (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवतु) हो, (ब्रह्म) वेद (नः) हमें (शम्) सुखदायक हो, (ग्रावाणः) तत्वदर्शी लोग (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों, (यज्ञाः) यज्ञ (शम्) सुखदायक (सन्तु) हों। (स्वरूणाम्) यूपों [जय स्तम्भों] के (मितयः) परिमाण वा विस्तार (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों, (प्रस्वः) ओषधियां (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों, (उ) और (वेदिः) वेदी (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो ॥ ७ ॥

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

(उरुचक्षाः) बड़ी दृष्टि वाला (सूर्यः) सूर्य (नः) हमें (शम्) सुखदायक (उदेतु) उदय हो, (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशायें (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों। (ध्रुवयः) दृढ़ (पर्वताः) पहाड़ (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों, (सिन्धवः) सब समुद्र (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों, (उ) और (आपः) जल वा प्राण (शम्) सुखदायक (सन्तु) हों ॥ ८ ॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥

(अदितिः) अखण्ड देवमाता [वेदविद्या वा धरती माता] (व्रतेभिः =व्रतैः) अपने नियमों से (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवतु) हो, (मरुतः) वेदवेत्ता ऋत्विक् लोग और (सु-अर्काः) बड़े बड़े पण्डित (नः)

हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों। (विष्णुः) व्यापक सूर्य वा यज्ञ (नः) हमें (शम्) सुखदायक हो, (उ) और (पूषा) भूमि (नः) हमें (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो, (भवित्रम्) अन्तरिक्ष वा जल (नः) हमें (शम्) सुखदायक हो, (उ) और (वायुः) पवन (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो ॥ ९ ॥

शं नो॑ दे॒वः स॑वि॒ता त्राय॑माणः॒ शं नो॑ भवन्तू॒षसो॑ विभा॒तीः ।
शं नः॑ प॒र्जन्यो॑ भवतु प्र॒जाभ्यः॒ शं नः॒ क्षेत्र॑स्य॒ पति॑रस्तु श॒म्भुः ॥१०॥

(देवः) प्रकाशमान (सविता) सूर्य (त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ (नः) हमें (शम्) सुखदायक हो, (विभातीः=०-त्यः) जगमगाती हुई (उषसः) प्रभात वेलायें (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों। (पर्जन्यः) बादल (नः) हमें और (प्रजाभ्यः) प्रजाओं को (शम्) सुखदायक (भवतु) हो, (शम्भुः) मंगलदाता (क्षेत्रस्य) खेत का (पतिः) स्वामी, किसान (नः) हमें (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो ॥ १० ॥

शं नो॑ दे॒वा वि॒श्वदे॑वा भवन्तु॒ शं सर॑स्वती स॒ह धी॒भिर॑स्तु ।
शम॑भि॒षाचः॒ शमु॑ राति॒षाचः॒ शं नो॑ दि॒व्याः पार्थि॑वाः॒ शं नो॒ अप्याः॑

(विश्वदेवाः) दिग्विजयी (देवाः) विद्वान् जन (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों, (सरस्वती) विज्ञानवती वेदविद्या (धीभिः सह) अनेक क्रियाओं के साथ (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो। (अभिषाचः) सब से मिलनसार लोग (शम्) सुखदायक हों, (उ) और (राति-साचः) दानों की वर्षा करने हारे (शम्) सुखदायक हों, (दिव्याः) आकाश के पदार्थ [वायु, विमान आदि] और (पार्थिवाः) पृथिवी के पदार्थ [राज्य, अग्निरथ, सुवर्ण आदि] (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों, (अप्याः) जल संबन्धी पदार्थ [नौका, मोती, मूंगा आदि] (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों ॥ ११ ॥

शं नः॑ स॒त्यस्य॒ पत॑यो भवन्तु॒ शं नो॒ अर्व॑न्तः॒ शमु॑ सन्तु॒ गावः॑ ।
शं न॑ ऋ॒भवः॑ सु॒कृतः॑ सु॒हस्ताः॒ शं नो॑ भवन्तु पि॒तरो॒ हवे॑षु ॥१२॥

(सत्यस्य) सत्य के (पतयः) पालन करने हारे पुरुष (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों, (अर्वन्तः) घोड़े (नः) हमें (शम्) सुखदायक (उ) और (गावः) गौयें (शम्) सुखदायक (सन्तु) हों। (ऋभवः) बुद्धिमान् (सुकृतः) बड़े बड़े काम करने हारे (सुहस्ताः) हस्त क्रिया में चतुर लोग (नः) हमें (शम्) सुखदायक हों, (पितरः) रक्षा करने हारे [पिता आदि मान्य विद्वान् पुरुष] (हवेषु) यज्ञों में (नः) हमें (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों ॥ १२ ॥

शं नो॑ अ॒ज एक॑पाद्दे॒वो अ॑स्तु॒ शं नोऽहि॑र्बु॒ध्न्य१॒ः शं स॑मु॒द्रः।
शं नो॑ अ॒पां नपा॑त्पे॒रुर॑स्तु॒ शं नः॒ पृश्नि॑र्भवतु दे॒वगो॑पाः ॥१३॥

(अजः) अजन्मा, (एकपात्) एक डगवाला, अर्थात् एकरस व्यापक, (देवः) प्रकाशमय भगवान् (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो, (अहिः) न हारनेवाला, (बुध्न्यः) सब मूलतत्त्वों का साधक [आदि-कारण जगदीश्वर] (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक हो, (समुद्रः) सब का सींचने वाला ईश्वर (शम्) शान्तिदायक हो। (अपाम्) प्रजाओं का (नपात्) न गिरानेवाला, (पेरुः) पार लगाने हारा परमात्मा (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो, (पृश्निः) सब का छूने वाला (देवगोपाः) विद्वानों वा दिव्यपदार्थों का रक्षक परमेश्वर (नः) हमें (शम्) शान्तिदायक (भवतु) हो ॥ १३ ॥

इन्द्रो॒ विश्व॑स्य राजति॒ शं नो॑ अस्तु द्वि॒पदे॒ शं चतु॑ष्पदे ॥१४॥

य० ३६। ८॥ द्विपदा विराट् गायत्री, ८+१२॥

(इन्द्रः) परमेश्वर (विश्वस्य) जगत् का (राजति) राजा है, वह (नः) हमें और (द्विपदे) दो पाये, मनुष्यादि के लिये (शम्) सुखकारक और (चतुष्पदे) चौपाये, गौ आदि के लिये (शम्) सुखकारक (अस्तु) हो ॥ १४ ॥

शं नो॒ वातः॑ पवता॒ꣳ शं न॑स्तपतु॒ सूर्यः॑।
शं नः॒ कनि॑क्रदद्दे॒वः प॒र्जन्यो॑ अ॒भि व॑र्षतु ॥ १५ ॥

य० ३६। १०॥ अनुष्टुप्॥

(शम्) सुखकारी (वातः) पवन (नः) हमको (पवताम्) शुद्ध करे, (शम्) सुखकारी (सूर्यः) सूर्य (नः) हमको (तपतु) तपावे। (शम्) सुखकारी (कनिक्रदत्) अत्यन्त गरजता हुआ (देवः) उत्तम गुणवाला (पर्जन्यः) बादल (नः) हमारे लिये (अभि) सब ओर से (वर्षतु) वर्षा करे॥ १५॥

अहानि शं भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रतिधीयताम्।
शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः॥१६॥

य० ३६। ११॥ अहानीति द्विपदा गायत्री, ८×२। शं न इति शेषस्त्रिष्टुप्, ११×४, यथा मन्त्रः १ शान्तिकरणे।

(अहानि) दिन (नः) हमें (शम्) सुखकारी (भवन्तु) हों, (रात्रीः=रात्रयः) रातें (शम् प्रति) सुख के लिये (धीयताम्=०—न्ताम्) धारण कियी जावें। (इन्द्राग्नी) बिजुली और अग्नि दोनों (अवोभिः) रक्षा सामग्री से (नः) हमें (शम्) सुखकारक (भवताम्) हों, (रातहव्या=०—व्यौ) ग्राह्य पदार्थों के देने हारे (इन्द्रावरुणा=०—णौ) बिजुली और जल (नः) हमें (शम्) सुखकारी हों। (इन्द्रापूषणा=०=णौ) बिजुली और पृथिवी (वाजसातौ) अन्नों के लाभ में (नः) हमें (शम्) सुखकारी हों, (शम्) सुखदायक (इन्द्रासोमा=०—मौ) बिजुली और उत्तम ओषधि (सुविताय=०—त्ताय) उत्तम धन के लिये (शम्) रोगनाशक और (योः) भय निवर्त्तक हों॥ १६॥

सूचना १—"धीयन्ताम" के स्थान में "धीयताम्" लिपि प्रमाद सा है।

सूचना २—जैसे दिन और रात का परस्पर सम्बन्ध है वैसे ही बिजुली-अग्नि, बिजुली-जल आदि दो दो पदार्थों का सम्बन्ध है॥

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभिस्रवन्तु नः॥ १७॥

य० ३६। १२॥ अथर्व० १। ६। १॥ गायत्री॥

(देवीः=०—व्यः) दिव्य गुण से युक्त (आपः) जल धारायें (नः) हमारे (अभि-इष्टये) पूर्ण यज्ञ वा अभिलाषा के लिये और (पीतये)

सुख पान के लिये (शम्) आनन्ददायक (भवन्तु) हों, और (शम्) रोग नाशक और (योः) भय निवर्त्तक होकर (नः अभि) हमारे ऊपर (स्रवन्तु) बहें ॥ १७ ॥

सूचना—(आपः) भौतिक जल के समान ईश्वरज्ञान की धारायें अर्थ है ॥

दूसरा अर्थ।

(देवीः) प्रकाश स्वरूप (आपः) सर्वव्यापक परमेश्वर (नः) हमारे (अभि-इष्टये) पूर्ण यज्ञ वा अभिलाषा के लिये और (पीतये) रक्षा वा वृद्धि के लिये (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हो, और (नः अभि) हमारे ऊपर (शम्) सुख की और (योः) अभय की (स्रवन्तु) वर्षा करे ॥ १७ ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १८ ॥

य० ३६ । १७ ॥ भुरिक् शक्वरी १४×४+१=५७ ॥

(द्यौः) प्रकाशमान सूर्य आदि लोक (शान्तिः) सुखदायक हो, (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक [वायु मण्डल, मेघ मण्डल, तारागण आदि] (शान्तिः) सुखदायक हो, (पृथिवी) भूलोक आदि (शान्तिः) सुखदायक हो, (आपः) जल (शान्तिः) सुखदायक हो, (ओषधयः) सब अन्न और ओषधें (शान्तिः) सुखदायक हों। (वनस्पतयः) सब वृक्ष (शान्तिः) सुखदायक हों, (विश्वे देवाः) सब दिव्य जीव और दिव्य पदार्थ (शान्तिः) सुखदायक हों, (ब्रह्म) ईश्वर, वा वेदविद्या वा जितेन्द्रियता (शान्तिः) सुखदायक हो, (सर्वम्) यह सब (शान्तिः) सुखदायक हो, (शान्तिः एव) और इनसे अतिरिक्त सब ही सुख (शान्तिः) सुखदायक हो। (सा शान्तिः) वह तू हे शान्ति देवी (मा) मुझ को (एधि=एहि) प्राप्त हो ॥ १८ ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १९ ॥

य० ३६ । २४ ॥ ब्राह्मी त्रिष्टुप् ॥

(तत्) उस (चक्षुः) सब के नेत्र (देवहितम्) विद्वानों के हितकारी (पुरस्तात्) पहिले काल से (उत्-चरत्) उदय होते हुये (शुक्रम्) बीज-रूप परब्रह्म को (शतम् शरदः) सौ शरद् ऋतु तक (पश्येम) हम देखते रहें, (शतम् शरदः) सौ वर्ष तक (जीवेम) हम जीते रहें, (शतम् शरदः) सौ वर्ष तक (शृणुयाम) हम सुनते रहें, (शतम् शरदः) सौ वर्ष तक (प्रब्रवाम) हम बोलते रहें, (शतम् शरदः) सौ वर्ष तक (अदीनाः) दीनता-रहित (स्याम) हम रहें, (च) और (शतात् शरदः) सौ वर्ष से (भूयः) अधिक, हम यह सब व्यवहार करते रहें ॥ १९ ॥

भावार्थ—मनुष्य उस परब्रह्म को सर्वदर्शी और जगत् का आदि कारण जानें और जितेन्द्रियता और ब्रह्मचर्य आदि से सर्वपुष्टाङ्ग रह कर जीवन भर ईश्वर की आज्ञा को पालें और कभी अङ्ग भङ्ग और दीन (दूसरे के मोहताज) न होकर सदा सुख भोगें ।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु ॥२०॥

य० ३४ । १–६ ॥ त्रिष्टुप् ॥

(यत्) जो (जाग्रतः) जागते हुये पुरुष का (दैवम्) दिव्य गुण वाला मन (दूरम्) दूर दूर तक (उदैति=उत्+आ+एति) ऊँचा चढ़ जाता है, (उ) और (तत्) वही मन (सुप्तस्य) सोते हुये का (तथा एव) उसी प्रकार (एति) भीतर चलता रहता है । और जो (दूरङ्गमम्) दूर दूर लेजाने वाला (ज्योतिषाम्) विषय प्रकाशक इन्द्रियों का (एकम्) एक (ज्योतिः) प्रकाशक है, (तत्) वह (मे मनः) मेरा मन (शिवशङ्कल्पम्) धार्मिक विचार वाले (अस्तु) हो ॥ २० ॥

सूचना—यहाँ से छह मन्त्र तक शिव सङ्कल्प सूक्त है । शिव सङ्कल्प ऋषि और मन देवता है । सरल, प्रिय और गूढ़ विषय है कि सब मनुष्य मन की शक्तियों को महा उपकारी बना कर उस परब्रह्म की कृपा और महिमा पर धन्यवाद दें ।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु ॥२१ ॥

(येन) जिस मन के द्वारा (अपसः) कर्म के (मनीषिणः) जानने हारे (धीराः) धीर पुरुष (यज्ञे) यज्ञ अर्थात् धर्मव्यवहार में (विदथेषु) विद्वानों के बीच (कर्माणि) कामों को (कृण्वन्ति) करते हैं। और (यत्) जो (प्रजानाम्) प्राणियों के (अन्तः) भीतर (अपूर्वम्) इन्द्रियों में अद्वितीय और (यक्षम्) पूजनीय है, (तत्) वह (मे मनः) मेरा मन (शिवसङ्कल्पम्) आनन्द का विचारने वाला (अस्तु) हो ॥ २१ ॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२२

(यत्) जो मन (प्रज्ञानम्) ज्ञान का उत्तम भण्डार (उत) और (चेतः) स्मरणशक्ति (च) और (धृतिः) धारण शक्ति है, और (यत्) जो (अमृतम्) अमर अर्थात् जीती जागती (ज्योतिः) ज्योति (प्रजासु अन्तः) प्राणियों के भीतर है। (यस्मात् ऋते) जिसके बिना (किम् चन) कुछ भी (कर्म) काम (न) नहीं (क्रियते) किया जाता है, (तत्) वह (मे मनः) मेरा मन (शिवसङ्कल्पम्) शुभ विचारवाला (अस्तु) हो ॥ २२ ॥

सूचना—(अमृतम्) का अर्थ न मरनेवाला, अमर, वा अनष्ट अर्थात् सदा चेतन्य है॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २३॥

(येन) जिस (अमृतेन) जीवते मन द्वारा (इदम्) यह (भूतम्) बीता हुआ, (भुवनम्) वर्तमान और (भविष्यत्) आगामी (सर्वम्) सब वृत्तान्त (परिगृहीतम्) सर्वथा जाना जाता है। और (येन) जिसके द्वारा (सप्तहोता) सात हवन करनेवालों [मस्तक के सात गोलकों] से पूरा किया हुआ (यज्ञः) पूजनीय कर्म (तायते) फैलाया जाता है, (तत्) वह (मे मनः) मेरा मन (शिवसङ्कल्पम्) शुभ शङ्कल्प वाला (अस्तु) हो ॥ २३ ॥

सूचना—(सप्तहोता) की विशेष व्याख्या शब्द संग्रह में देखो॥

४

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिँश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२४

(यस्मिन्) जिस मन में, [त्रयी विद्या, तीन विद्यायें] १-(ऋचः) पदार्थों की गुणप्रकाशक विद्यायें, और २-(साम=सामानि) मोक्ष विद्यायें, और (यस्मिन्) जिसमें ३-(यजूंषि) ब्रह्म निरूपण विद्यायें, [जो तीन विद्यायें चारों वेदों में वर्णित हैं] (प्रतिष्ठिता=०-तानि) जड़ी हैं, (इव) जैसे (रथनाभौ) रथ के पहिये के अन्दर में (अराः) अरे जड़े होते हैं । (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) सर्व (चित्तम्) विचार (ओतम्) बुना हुआ हो, (तत्) वह (मे मनः) मेरा मन (शिवसङ्कल्पम्) भलाई का मनोरथ करने वाला (अस्तु) हो ॥ २४ ॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २५॥

(यत्) जो मन (मनुष्यान्) मनुष्यों को [इन्द्रियों के द्वारा] (इव) लगातार (नेनीयते) लिये लिये फिरता है, (इव) जैसे (सु-सारथिः) चतुर रथवान् (वाजिनः) वेगवाले (अश्वान्) घोड़ों को (अभीशुभिः) बागडोर से । (यत्) जो (हृत्प्रतिष्ठम्) हृदय में ठहरा हुआ, (अजिरम्) सब का चलाने हारा (जविष्ठम्) बड़ा ही वेगवाला है, (तत्) वह (मे मनः) मेरा मन (शिवसङ्कल्पम्) मङ्गल विचार युक्त (अस्तु) हो ॥ २५ ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र
स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते ।
२ २ ३ १ २
शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ २६ ॥
साम० उत्तरार्चिके, प्रपा० १ म० ३ ॥ ऋ० ९ । ११ । ३ ॥ गायत्री ॥

(सः) सो तू (राजन्) हे राजन् परमेश्वर ! (गवे) गौ की (शम्) रक्षा के लिये, (जनाय) मनुष्य की (शम्) रक्षा के लिये, (अर्वते) घोड़े की (शम्) रक्षा के लिये, और (ओषधीभ्यः) अन्न और सोम

रस आदि ओषधियों की (शम्) रक्षा के लिये (नः) हमें (पवस्व) शुद्ध कर ॥ २६ ॥

अभ॑यं नः करत्य॒न्तरि॑क्ष॒मभ॑यं॒ द्यावा॑पृथि॒वी उ॒भे इ॒मे ।
अभ॑यं प॒श्चादभ॑यं पु॒रस्ता॑दु॒त्तरा॑दध॒रादभ॑यं नो अस्तु ॥ २७ ॥

म० २७, २८ अथर्व० का० १९ सू० १५ म० ५, ६ ॥ त्रिष्टुप् वा जगती ॥

(नः) हमें (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक (अभयम्) अभय (करति) करे, (इमे) यह (उभे) दोनों (द्यावापृथिवी=०–द्यौ) सूर्य और भूलोक (अभयम्) अभय करें । (पश्चात्) पश्चिम में वा पीछे (अभयम्) अभय हो, (पुरस्तात्) पूर्व में वा आगे (अभयम्) अभय हो, (उत्तरात्) उत्तर में वा ऊपर और (अधरात्) दक्षिण में वा नीचे (अभयम्) अभय (नः) हमारे लिये (अस्तु) हो ॥

अभ॑यं मि॒त्रादभ॑यम॒मित्रा॒दभ॑यं ज्ञा॒तादभ॑यं प॒रोक्षा॑त् ।
अभ॑यं॒ नक्त॒मभ॑यं॒ दिवा॑ नः॒ सर्वा॒ आशा॒ मम॑ मि॒त्रं भ॑वन्तु ॥२८॥

(मित्रात्) मित्र से (अभयम्) अभय, (अमित्रात्) वैरी से (अभयम्) अभय हो, (ज्ञातात्) जानकार से (अभयम्) अभय और (परोक्षात्) आंख ओट से (अभयम्) अभय हो । (नः) हमारे लिये (नक्तम्) रात्रि में (अभयम्) अभय और (दिवा) दिन में (अभयम्) अभय हो, (मम) मेरी (सर्वाः) सब (आशाः) आशायें (मित्रम्) हितकारी (भवन्तु) हों॥२८॥

इति शान्तिकरणम् ॥

४—अथ हवनमन्त्राः ॥

१-हवनविचारः ॥

जिन मन्त्रों से हवन किया जाता है वह हवन मन्त्र कहाते हैं। हवन का नाम होम, अग्निहोत्र, और यज्ञ भी है। हवन, होम और होत्र का अर्थ दान है, और यज्ञ के अर्थ तीन हैं, ईश्वर पूजा, विद्वानों का सत्सङ्ग, और विद्या आदि का दान। जिस कर्म से अग्नि ज्ञान-स्वरूप परमेश्वर की आज्ञापालन के लिये तीनों यज्ञों के साथ भौतिक अग्नि में सुगन्धित आदि पदार्थों का दान किया जाता है वह कर्म हवन आदि कहाते हैं। आहुति का अर्थ दान अर्थात् मन्त्र पढ़ कर घी आदि आग में छोड़ना, और (स्वाहा) का सुन्दर आहुति, सुन्दर वाणी वा स्तुति है ॥

हवन सब मनुष्यों को प्रातःकाल और सायंकाल, अथवा दोनों काल का एक समय में, और आनन्दोत्सवों पर सदा कर्तव्य है। हवन करने से पवन, जल और अन्न की शुद्धि होकर संसार में बुद्धिवृद्धि, शूरता, धीरता, बल और स्वस्थता फैलती है ॥

मन्त्रों का अर्थ सहित ही पाठ और जप करना अति उत्तम है, क्योंकि वेदों में विशेष कर, इन चारों वेदों से चुने मन्त्रों में ब्रह्मविद्या है। भगवान् मनु जी कहते हैं।

वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो यत्रतत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

मनु० अ० १२ । १०२ ॥

वेदशास्त्र के अर्थ का सार जानने हारा पुरुष चाहे किसी आश्रम में रहे, वह इस लोक (जन्म) में रहकर मोक्ष (परम आनन्द) पाता है ॥

२—यज्ञ समिधा ॥

पलाश (ढाक), शमी, पीपल, बड़, गूलर, आंब, विल्व आदि की समिधा वेदी के प्रमाणे छोटी बड़ी, शुष्क, पवित्र और अदूषित लेवें, और यथायोग्य ठीक करके वेदी में चुनें ॥

३—चतुर्विधहोमपदार्थाः ॥

(प्रथम, सुगन्धित)-कस्तूरी, केशर, कपूर, अगर, तगर, श्वेत-चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री, नागरमोथा, बालछड़, उशीर (ख़स), लौंग आदि, (द्वितीय, पुष्टिकारक) घृत, दूध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेहूं, उड़द आदि, (तीसरे, मिष्ट)-शक्कर, मधु, छुहारे, दाख, पिस्ता, बादाम आदि, (चौथे, रोगनाशक) सोमलता (गिलोय), तज, मुलहटी आदि ओषधियां ॥

४—स्थाली पाकः ॥

भात, खिचड़ी, खीर, लड्डू, मोहनभोग आदि मिष्ट पदार्थ ॥

५—ऋत्विग्वरणम् ।

यजमान ऋत्विजों अर्थात् कर्मकर्ताओं का वरण करे। जो एक हो तो वह (पुरोहित), जो दो हों तो (ऋत्विक् और पुरोहित), जो तीन हों तो (ऋत्विक्, पुरोहित और अध्यक्ष), और जो चार हों तो (होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा) कहलावें । यजमान का आसन वेदी के पश्चिम वा दक्षिण में रहे, और सब ऋत्विजों को यज्ञ-मात्र वेदी के चारों ओर यथानियम आसनों पर सत्कार पूर्वक बिठलावे ॥

यजमानोक्तिः—**(ओमावसोः सदने सीद)** हे भगवन्! (वसोः) यज्ञ के (सदने) आसन पर (आ-सीद) बैठिये ॥

ऋत्विगुक्तिः=**(ओं सीदामि)**, (ओम्) हां (सीदामि) मैं बैठता हूं॥

यजमानोक्तिः—**(अहमद्योक्तकर्मकरणाय भवन्तं वृणे)**, (अहम्) मैं (अद्य) आज (उक्तकर्मकरणाय) इस कर्म के करने के लिये (भवन्तम्) आप को (वृणे) स्वीकार करता हूं ॥

ऋत्विगुक्तिः—**(वृतोऽस्मि)** मुझे स्वीकार है ।

६–आचमनविधिः ॥

इन तीन मन्त्रों से कर्मकर्ता तीन आचमन करें ॥

ओं अमृतोपस्तरणमसि–स्वाहा ॥ इससे एक ॥

(ओम् अमृत) हे अमर परब्रह्म ! तू (उपस्तरणम्) जगत् का सर्वथा फैलाने वाला (असि) है । (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी है ॥

ओं अमृतापिधानमसि–स्वाहा ॥ इससे दूसरा ॥

(ओम् अमृत) हे अमर परब्रह्म ! तू (अपिधानम्) जगत् का सर्वथा धारण करने वाला है । (स्वाहा) यह सुवाणी है ॥

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयताम्–स्वाहा ॥ इससे तीसरा ।

(ओम्) परमेश्वर । (सत्यम्) सत्य कर्म, (यशः) यश (श्रीः) सम्पत्ति और (श्रीः) ऐश्वर्य (मयि) मुझमें (श्रयताम्) विराजमान हो । (स्वाहा) यह सुवाणी है ॥

७–अङ्गस्पर्शविधिः ॥

इन सात मन्त्रों से अङ्गस्पर्श और आचमन करें ॥

ओं वाङ् म आस्येऽस्तु ॥ १ ॥ मुख छूवें ॥

(ओम्) परमेश्वर ! (वाक्) वाणी (मे) मेरे (आस्ये) मुख में (अस्तु) रहे ॥

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ २ ॥ दोनों नथने ॥

(ओम्) परमेश्वर ! (मे) मेरे (नसोः) दोनों नथनों में (प्राणः) श्वासशक्ति (अस्तु) रहे ॥

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥ ३ ॥ दोनों आंखें ॥

(ओम्) परमेश्वर ! (मे) मेरी (अक्ष्णोः) दोनों आंखों में (चक्षुः) दृष्टि (अस्तु) रहे ॥

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥ ४ ॥ दोनों कान ॥

(ओम्) परमेश्वर ! (मे) मेरे (कर्णयोः) दोनों कानों में (श्रोत्रम्) श्रवण शक्ति (अस्तु) रहे ॥

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥ ५ ॥ दोनों भुजायें ॥

(ओम्) परमेश्वर ! (मे) मेरी (बाह्वोः) दोनों भुजाओं में (बलम्) बल (अस्तु) रहे ॥

ओं ऊर्वोर्म ओजोऽस्तु ॥ ६ ॥ दोनों जंघायें ॥

(ओम्) परमेश्वर ! (मे) मेरी (ऊर्वोः) दोनों जंघाओं में (ओजः) सामर्थ्य (अस्तु) रहे ॥

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥ ७ ॥ दाहिने हाथ से जल लेकर मार्जन करें ॥

(ओम्) परमेश्वर (मे) मेरे (अङ्गानि) सब अङ्ग (अरिष्टानि) रोग-रहित और (मे) मेरे (तनूः) सब शरीर (तन्वा सह) विस्तार के साथ (सन्तु) रहें ॥

८—ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाः ॥

इसके पीछे (ओ३म् विश्वानि देव) इस मन्त्र से (अग्ने नय सुपथा) इस मन्त्र तक आठ मन्त्रों से ईश्वरस्तुति आदि करें ॥

९—अग्न्याधानम् ॥

इन दो मन्त्रों से कपूर से वेदी वा हवन कुण्ड में अग्नि को प्रज्वलित करें ॥

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥१॥

यजु० ३ । ५ ॥

१ आदाण अत्राप, अस्तुं पोग्प स्यात् अस्यासि इत्यर्थः / 'नाहिताग्न्यादिषु' पा० (२-२-३६) इति आहिताग्न्यादित्वात् परनिपातः /

२ उरोर्भावः वरिमा तेन वरिम्णा महत्वेन / वरिष्ठा पृथिवी इव ... पृथिवी ऊरुत्वेन ... महत्वेन ... भूमा शरीर ...

(भूः, भुवः, स्वः) तीन महाव्याहृति वा महावाक्य हैं। (ओम्) परमेश्वर (भूः) सब का आधार, (भुवः) सब में व्यापक (स्वः) सुखस्वरूप है। वह परमेश्वर संसार के लिये (भूम्ना) बहुत्व के कारण [सब लोकों के धारण करने से] (द्यौः इव) आकाश के समान और (वरिम्णा) अपने फैलाव से (पृथिवी इव) पृथिवी के समान है। (पृथिवी) हे पृथिवी (देवयजनि) जो तू देवताओं का यज्ञस्थान है, (तस्याः ते) उस तेरी (पृष्ठे) पीठ पर (अन्नादम्) हव्य खाने हारे (अग्निम्) भौतिक अग्नि को (अन्नाद्याय) खाने योग्य अन्न की प्राप्ति के लिये (आदधे) मैं स्थापित करता हूं॥

भावार्थ—वेदी में भौतिक अग्नि के समान इस परब्रह्म को अपने हृदय में आत्मबल के लिये धारण करें। ऐसा ही सर्वत्र हवन में समझें॥

ओम् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयं च। अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥२

य० १५। ५४॥

(ओम्) परमेश्वर। (अग्ने) हे विद्वान् यजमान तू (उत्) उत्तम रीति से (बुध्यस्व) चैतन्य हो, और (प्रति) प्रत्यक्ष (जागृहि) जागृत हो। (त्वम्) तू, हे यजमान (च) और (अयम्) यह यज्ञ, तुम दोनों (इष्टापूर्ते) इष्ट अर्थात् वेदाध्ययन, आतिथ्य आदि, और पूर्त पूर्णबल, ब्रह्मचर्य आदि कर्मों से (संसृजेथाम्) संसर्ग करो। (विश्वे देवाः) हे सब विद्वान् जनो! (च) और (यजमानः) यजमान, तुम सब (अस्मिन्) इस (उत्तरस्मिन्) उत्तम (सधस्थे) समाज में (अधि) अधिकार पूर्वक (सीदत) बैठो॥ २॥

१०—समिधाधानम्॥

अगले तीन मन्त्रों से तीन समिधाओं को घृत लगा कर अग्नि में धरें॥

ओम्। समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन् हव्या जुहोतन, स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम॥१॥

य० ३। १॥ एक समिधा॥

(समिधा) इन्धन से और (घृतैः) घृत से (अतिथिम्) व्यापनशील (अग्निम्) अग्नि को (दुवस्यत) तुम सब पूजो और (बोधयत) चेताओ। (अस्मिन्) इसमें (हव्या=०-नि) हवन सामग्री को (आ) यथाविधि (जुहोतन) चढ़ाओ, (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है। (इदम्) यह आत्मसमर्पण (अग्नये) परमेश्वर के लिये है-(इदम्) यह दान (मम) मेरे लिये (न) नहीं है ॥ १ ॥

ओं । सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन ।
अग्नये जातवेदसे, स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे—इदं न मम ॥२॥

य० ३ । २ ॥ दूसरी समिधा ॥

(सुसमिद्धाय) अच्छे प्रकार प्रदीप्त (शोचिषे) संशोधक (जातवेदसे) पदार्थों में विद्यमान (अग्नये) अग्नि के लिये (तीव्रम्) तपाया हुआ (घृतम्) घृत (जुहोतन) तुम चढ़ाओ, (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है। (इदम्) यह समर्पण (जातवेदसे) पदार्थों में विद्यमान (अग्नये) परमेश्वर के लिये है-(इदम्) यह (न मम) मेरे लिये नहीं है ॥

ओं । तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि ।
बृहच्छोचा यविष्ठ्य, स्वाहा । इदमग्नयेऽङ्गिरसे—इदं न मम ॥३॥

य० ३ । ३ ॥ तीसरी समिधा ।

(अङ्गिरः) हे व्यापनशील ! (तम् त्वा) उस तुझ को (समिद्भिः) इन्धनों से और (घृतेन) घृत से (वर्धयामसि=०-मः) हम बढ़ाते हैं, (यविष्ठ्य) हे अत्यन्त संयोजक वियोजक ! तू (बृहत) बहुत बहुत (शोचा=०-च) प्रज्वलित हो। (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है। (इदम्) यह समर्पण (अङ्गिरसे) सर्वव्यापक (अग्नये) परमेश्वर के लिये है-(इदम्) यह (न मम) मेरे लिये नहीं है ॥

११-घृताहुतिः ॥

स्रुवा को अंगूठा, मध्यमा और अनामिका से पकड़ कर घृताहुति चढ़ावें। जिन मन्त्रों के साथ (इदं न मम) यह प्रयोग है, उस प्रत्येक

आहुति के स्रुवा में बचे घृत को जल पात्र में इकट्ठा करते जायें और यज्ञ समाप्ति पर अङ्गों पर मर्दन करें । इसका यह प्रयोजन है कि मनुष्य निरहङ्कार और निष्काम होकर ईश्वर पर पूर्ण श्रद्धा करें । इस प्रकार हवन आदि अपरा (प्राथमिक) विद्या से ब्रह्मविद्या को, जो परा (अति ऊँची) विद्या है, प्राप्त कर जीवन्मुक्त हो कर संसार में विचरें ॥

नीचे के मन्त्र से प्रज्वलित अग्नि में पांच घृताहुति दें ॥

ओम् । अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय, स्वाहा । इदग्नये जातवेदसे—इदं न मम ॥ १ ॥ पांच घृताहुति ।

(जातवेदः) हे सब पदार्थों में विद्यमान परमेश्वर ! (अयम्) यह मेरा (आत्मा) आत्मा (ते) तेरे लिये (इध्मः) इन्धनरूप है, (तेन) इस-से मुझ में (इध्यस्व) तू प्रकाशित हो, (च) और (इत) अवश्य (ह) ही (वर्धस्व) बढ़ । (च) और (अस्मान्) हम को (वर्धय) तू बढ़ा, और (प्रजया) पुत्र, पौत्र, सेवक आदि प्रजा से, (पशुभिः) गौ आदि पशुओं से, (ब्रह्मवर्चसेन) वेदविद्या के तेज से, और (अन्नाद्येन) भोग्य, धान्य, घृत, दुग्ध आदि अन्न से (सम्-एधय) समृद्ध कर । (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है । (इदम्) यह सम्पर्ण (जातवेदसे) पदार्थों में विद्यमान (अग्नये) ज्ञान स्वरूप परमेश्वर के लिये है-(इदम्) यह (न मम) मेरे लिये नहीं है ॥ १ ॥

१२—जलप्रक्षालनम् ।

अञ्जलि में जल लेके इन चार मन्त्रों से वेदी के चारों ओर छिड़कें ॥

ओम् । अदितेऽनुमन्यस्व ॥ १ ॥ इससे पूर्व में ॥

(अदिते) हे अखंड परमेश्वर ! (अनुमन्यस्व) तू अनुमत वा प्रसन्न हो ॥

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥ २ ॥ इससे पश्चिम में ॥

(अनुमते) हे हितकारी बुद्धि वाले ईश्वर ! (अनुमन्यस्व) तू प्रसन्न हो ॥

ओम् । सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥ ३ ॥ इससे उत्तर में ॥

(सरस्वति) हे सब विद्याओं के भण्डार जगदीश्वर ! (अनुमन्यस्व) तू प्रसन्न हो ॥

ओम् । देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥४॥
य० ११ । ७ ॥ ३० । १ ॥ इससे चारों ओर ॥

(देव) हे प्रकाशमय (सवितः) सब के चलाने हारे परमेश्वर ! (यज्ञम्) इस यज्ञ वा उत्तम कर्म को (प्रसुव) आगे बढ़ा, और (यज्ञपतिम्) यज्ञ के रक्षक यजमान को (भगाय) ऐश्वर्य की सिद्धि के लिये (प्रसुव) आगे बढ़ा । (दिव्यः) अद्भुत स्वभाव (गन्धर्वः) विद्याओं का आधार (केतपूः) बुद्धि से शुद्ध करने हारा, परमेश्वर (नः) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) शुद्ध करे, (वाचः) विद्या का (पतिः) स्वामी परमात्मा (नः) हमारी (वाचम्) विद्या को (स्वदतु=स्वादयतु) मधुर करे ॥

१३–आघारावाज्याहुतिः ॥

नीचे लिखे मन्त्रों से दो घृताहुति दें ॥

ओम् । अग्नये स्वाहा । इदमग्नये–इदं न मम ॥ १ ॥ य० २२ । २७ ॥ वेदी के उत्तर भाग में ॥

(अग्नये) सर्वव्यापक परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) सुन्दर आहुति है । (इदम्) यह समर्पण (अग्नये) परमेश्वर के लिये है–(इदम्) यह (न मम) मेरे लिये नहीं है ॥

ओम् । सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय–इदं न मम ॥ २ ॥ य० २२ । २७ ॥ वेदी के दक्षिण में ॥

(सोमाय) सब के जनक परमेश्वर के पाने के लिये (स्वाहा) सुन्दर आहुति है । (इदम्) यह समर्पण (सोमाय) परमेश्वर के लिये है–(इदम् न मम) यह मेरे लिये नहीं है ॥

१४—आज्यभागाहुतिः ॥

इन दो मन्त्रों से वेदी के मध्य में घृताहुति दें ॥

ओम् । प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये—इदं न मम ॥१॥

य० २२ । ३२ ॥

(प्रजापतये) प्रजापालक, ईश्वर के लिये (स्वाहा) सुन्दर आहुति है । (इदम्) यह (प्रजापतये) परमेश्वर के लिये है—(इदम्) यह (न मम) मेरे लिये नहीं है ॥

ओम् । इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय—इदं न मम ॥ २ ॥

य० २२ । २७ ॥

(इन्द्राय) परम ऐश्वर्य वाले परमात्मा के लिये (स्वाहा) सुन्दर आहुति है । (इदम्) यह (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये है—(इदम् न मम) यह मेरे लिये नहीं है ॥

१५—प्रातःकालयज्ञमन्त्राः ॥

यहां से घृताहुति और साकल्याहुति दें ॥

ओं । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥१॥ य० ३ । ८ ॥

(सूर्यः) अन्तर्यामी परमेश्वर (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप है, जैसे (ज्योतिः) प्रकाश का मण्डल (सूर्यः) यह सूर्यलोक है, (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी है ॥

ओं । सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ २ ॥ य० ३ । ८ ॥

(सूर्यः) सब का चलाने हारा, जगदीश्वर (वर्चः) कान्तिदायक है, जैसे (ज्योतिः) कान्तिदायक (वर्चः) यह अन्न है, (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी है ॥

ओं । ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ ३ ॥ य० ३ । ८ ॥

(ज्योतिः) सब के नेत्र की ज्योति (सूर्यः) सर्वव्यापक ईश्वर है, जैसे (सूर्यः) यह सूर्य लोक (ज्योतिः) हमारी आंख की ज्योति है, (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है ॥

ओं । सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥ ४ ॥ य० ३ । १० ॥

(देवेन) प्रकाशमय (सविता) सर्वप्रेरक परमेश्वर से (सजूः) प्रीति-युक्त और (इन्द्रवत्या) सूर्य के साथ रहने वाली (उषसा) प्रभात बेला के (सजूः) साथ (जुषाणः) सेवा करता हुआ (सूर्यः) सूर्यलोक (वेतु) चमकता रहे (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी है ॥

१६—सायंकालयज्ञमन्त्राः ॥

ओम् । अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ १ ॥ य० ३ । ९ ॥

(अग्निः) परमेश्वर (ज्योतिः) प्रकाश स्वरूप है, जैसे (ज्योतिः) प्रकाशमान (अग्निः) यह आग है, (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी है ॥

ओम् । अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ २ ॥ य० ३ । ९ ॥

(अग्निः) परमेश्वर (वर्चः) कान्तिदायक है, जैसे (वर्चः) यह अन्न (ज्योतिः) कान्तिदायक है, (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी है ॥

ओम् । अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ ३ ॥ य० ३ । ९ ॥

(अग्निः) परमेश्वर (ज्योतिः) संसार के नेत्र की ज्योति, है, जैसे (अग्निः) आग का प्रकाश (ज्योतिः) हमारे नेत्र की ज्योति है, (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी है ॥

ओम् । सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥ ४ ॥ य० ३ । १० ॥

(देवेन) प्रकाशमय (सवित्रा) अन्तर्यामी ईश्वर से (सजूः) प्रीति-युक्त और (इन्द्रवत्या) सूर्य के साथ रहने वाली (रात्र्या) रात्री के (सजूः) साथ (जुषाणः) सेवा करता हुआ (अग्निः) आग का प्रभाव (वेतु) व्याप्त हो, (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी है ॥

१७—प्रातःसायंयज्ञमन्त्राः ॥

ओं । भूरग्नये प्राणाय स्वाहा । इदमग्नये प्राणाय—इदं न मम ॥१॥

(ओम्) परमेश्वर (भूः) सर्वाधार है । (अग्नये) आग के उत्तम प्रभाव और (प्राणाय) भीतर जाने वाली श्वास की स्वस्थता के लिये (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है । (इदम्) यह कर्म (अग्नये) आग के उत्तम प्रभाव और (प्राणाय) प्राण की स्वस्थता के लिये है—(इदम् न मम) यह मेरे लिये नहीं है ॥

ओं । भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा । इदं वायवेऽपानाय—इदं न मम॥२॥

(ओम्) परमेश्वर (भुवः) सर्वव्यापी है । (वायवे) पवन के उत्तम प्रभाव के लिये और (अपानाय) बाहिर आने वाली श्वास की स्वस्थता के लिये (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है । (इदम् वायवे अपानाय) यह कर्म, वायु के उत्तम प्रभाव और अपान की स्वस्थता के लिये हैं (इदम् न मम) यह मेरे लिये नहीं है ॥

ओं । स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा । इदमादित्याय व्यानाय—इदं न मम ॥ ३ ॥

(ओम्) परमेश्वर (स्वः) सुख स्वरूप है । (आदित्याय) सूर्य के उत्तम तेज और (व्यानाय) सब शरीर में घूमने वाले वायु की स्वस्थता के लिये (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है । (इदम् आदित्याय व्यानाय) यह सूर्य के उत्तम तेज और व्यान की स्वस्थता के लिये है—(इदम् न मम) यह मेरे लिये नहीं है ॥

ओं । भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा । इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा—इदं न मम ॥ ४ ॥

(ओम् भूः भुवः स्वः) परमेश्वर सर्वाधार, सर्वव्यापी और सुखस्वरूप है । (अग्नि-वायु-आदित्येभ्यः) आग, वायु और सूर्य के उत्तम प्रभाव के लिये और (प्राण-अपान-व्यानेभ्यः) प्राण, अपान और व्यान

की स्वस्थता के लिये (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है । (इदम्) यह (अग्नि-वायु-आदित्येभ्यः) आग, वायु और सूर्य के उत्तम प्रभाव के लिये और (प्राण-अपान-व्यानेभ्यः) प्राण, अपान, और व्यान की स्वस्थता के लिये है-(इदम् न मम) यह मेरे लिये नहीं है ॥

ओम् । आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥ ५ ॥

(ओम्) सर्वरक्षक परमेश्वर (आपः) सर्वव्यापी, (ज्योतिः) ज्योतिः स्वरूप (रसः) जगत् का बीज (अमृतम्) अमर (ब्रह्म) सब में बड़ा (भूः) सर्वाधार, (भुवः) सर्वव्यापक और (स्वः) सुखस्वरूप है ॥

ओं । यां मे॒धां दे॑वग॒णाः पि॒तर॑श्चो॒पास॑ते ।
तया॒ माम॒द्य मे॒धया॑ग्ने मे॒धाविनं कुरु॒ स्वाहा॑ ॥ ६ । या० ३२ । १४ ॥

(याम्) जिस (मेधाम्) बुद्धि वा धन का (देवगणाः) विद्वान् जन (च) और (पितरः) माननीय रक्षक महात्मा लोग (उपासते) आसरा लेते हैं । (तया) उस (मेधया) बुद्धि वा धन से (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (माम्) मुझको (अद्य) आज (मेधाविनम्) बुद्धिमान् वा धन-वान् (कुरु) तू कर, (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी है ॥

गायत्री वा सावित्री वा गुरुमन्त्रः ।

ओम् । भूर्भु॒वः स्वः॑ । तत् स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि । धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥ ७ ॥ य० ३६ । ३ ॥

(य० ३ । ३५ ॥ २२ । ६ ॥ ३० । २) इन स्थलों में यह मन्त्र (तत् सवितुर्) से है ॥

(भूः भुवः स्वः) तीन महाव्याहृति वा महावाक्य हैं । (ओम्) परमेश्वर (भूः) सर्वाधार, (भुवः) सर्वव्यापक और (स्वः) सुखस्वरूप है । (देवस्य) उस प्रकाशमय (सवितुः) सब के चलाने हारे जगदीश्वर की (तत्) उस प्रसिद्ध (वरेण्यम्) अति उत्तम (भर्गः) ज्योति को (धीमहि) हम धारण करें, (यः) जो परमेश्वर (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों वा कर्मों को (प्र-चोदयात्) आगे बढ़ावे ॥ ७ ॥

१८—मङ्गलोत्सवाः ।

इससे अधिक मङ्गल उत्सवों पर स्वस्तिवाचन के ३१ और शान्तिकरण के २८ मन्त्रों से आदि में (ओम्) और अन्त में (स्वाहा) शब्द लगा कर यज्ञ करें । यदि और अधिक इच्छा हो तो (सहस्रशीर्षा पुरुषः—इत्यादि) यजुर्वेद अध्याय ३१ मन्त्र १-२२, तथा (प्राणाय स्वाहा—इत्यादि) अध्याय २२ मन्त्र २३-३४ अथवा अन्य वेद मन्त्रों से हवन करें ॥

१९—स्विष्टकृताहुतिः ॥ (आत्मसमर्पणम्) ॥

यह स्विष्टकृत् आहुति सदा नित्य कर्म और उत्सव संस्कारों में पूर्णाहुति से पहिले दें, अर्थात् निरभिमानी होकर परमेश्वर को आत्म-समर्पण करें ॥

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत् स्विष्टकृद्विद्यात् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान् नः कामान्त्समर्धय स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते-इदं न मम ॥१॥

(ओम्) परमेश्वर । (यत्) जो कुछ (अस्य कर्मणः) इस कर्म में (अति-अरीरिचम्) मैंने अधिक किया है, (यद्वा) अथवा (न्यूनम्) न्यून (इह) इसमें (अकरम्) मैंने किया है, (तत्) उसको (सु-इष्ट-कृत्) उत्तम मनोरथ का सिद्ध करने हारा (अग्निः) परमेश्वर (विद्यात्) जाने, वह (मे) मेरे (सर्वम्) सब (सु-इष्टम्) उत्तम मनोरथ को (सु-हुतम्) सुन्दर रीति से अङ्गीकार (करोतु) करे ।

(सु-इष्ट-कृते) उत्तम मनोरथ के सिद्ध करने हारे, (सु-हुत-हुते) उत्तम दान के दान करने हारे (सर्व-प्रायश्चित्त-आहुतीनाम्) सब पाप नाशक तप की आहुतियों की (कामानाम्) उत्तम कामनाओं के (समर्ध-यित्रे) सिद्ध करने हारे (अग्नये) ज्ञान के निमित्त (नः) हम सब की (सर्वान्) सब (कामान्) उत्तम कामनाओं को (समर्धय) हे परमेश्वर ! तू सिद्ध कर । (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है । (इदम्) यह आत्म-

ओं तनूपा अग्ने ऽसि तन्वम्मे पाहि॥
ओं आयुर्दा अग्नेस्यायुर्मे देहि॥ २।
ओं वर्च्चोदा अग्ने ऽसि वर्च्चो मे देहि
ओं अग्ने यन्मे तन्वा ऽऊनं तन्म आ
४॥ यजुर्वेद अध्याय ३ मंत्र १०॥
ओं मेधां मे सविता आददातु॥ ५
ओं मेधा मे देवी सरस्वती आददा
ओं मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्तां पु
७॥ पार० गृ० सू का० २। क० ४। सू० ८॥
इन सात मन्त्रों से सात वार किञ्चित् हथे
उष्ण कर जल स्पर्श करके मुख स्पर्श
तत्पश्चात बालक॥ चाहिए,

वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिः ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।

समर्पण (सु-इष्ट-कृते) उत्तम इष्ट के सिद्ध करने हारे (अग्नये) परमेश्वर के लिये है-(इदम् न मम्) यह मेरे लिये नहीं है ॥

२०—पूर्णाहुतिः ॥

अन्त में निम्न लिखित मन्त्र से तीन बार पूर्णाहुति दें ॥

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा ॥ १ ॥

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा ॥ २ ॥

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा ॥ ३ ॥

(ओम्) परमेश्वर (सर्वम्) सब प्रकार (वै) अवश्य (पूर्णम्) पूर्ण है। (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है ॥

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

(ओम्) हे परमेश्वर कृपा करके (शान्तिः शान्तिः शान्तिः) एक आध्यात्मिक आनन्द जो आत्मा और शरीर में विद्याशुद्धि और स्वस्थता आदि से होता है, और दूसरा आधिभौतिक जो उत्साह और पराक्रम के कारण, शत्रु, सिंह सर्प आदि से निर्भयता से होता है, और तीसरा आधिदैविक जो शीत, उष्णता, वृष्टि, वायु आदि की अनुकूलता और सहन से होता है, यह तीन प्रकार का आनन्द हमें प्राप्त करा । तथा हे जगदीश्वर ! एक शारीरिक, दूसरा आत्मिक और तीसरा सामाजिक बल देकर हमें सदा सुखी रख ॥

ओं पूर्णादर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत। वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जं शतक्रतो ॥ यजु० अ० ३ मं० ४९

इस मंत्र से इडापात्र में पड़े हुए हुतशेष घृत की आहुति देनी चाहिए।

इति श्रीपण्डित क्षेमकरणदास त्रिवेदिना कृतम्

ईश्वरस्तुत्यादि-हवनमन्त्रभाष्यं समाप्तम् ॥

शान्तिप्रकरणम्

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ।

ओ३म् ... पूर्णाहुति ... स्वाहा ॥

शब्दसंग्रहः ।

अ ।

अघशंस, त्रि० (अघ+शंस । अघ पापकरणे-पचाद्यच् । अघं शंसति इच्छतीति अघशंसः । शसि इच्छायाम्-अच्) अनिष्ट चिन्तक, बुरा चीतने हारा, पापी ॥

अघ्न्य, त्रि० (अघ्न्यादयश्च । उ० ४।११२। इति न+हन गतिवधयोः-यक्, स्त्रियां टाप् । न हन्यते न हन्तीतिवा) न मारनेवाला । न मारने योग्य । अदण्डनीय । ब्रह्मा । पुण्यात्मा । (स्त्री) प्रजा । स्त्री । गौ, निघ० २।११॥

अङ्गिरस्, पु०, त्रि० (अङ्गतेरसिरिरुडागमश्च । उ० ४।२३६। अगि गतौ-असि, इरुट् आगमः) व्यापक । परमेश्वर । अग्नि । मुनि । विद्वान् ॥

अजिर, त्रि० न० (अजिरशिशिरशिथिल०। उ० १।५३। इति अज गतिक्षेपणयोः-किरच्) प्रेरक, चलानेवाला । वायु । शरीर । इन्द्रिय । आंगन । वेगवान्, क्षिप्र, निघ० २।१५॥

अदिति, स्त्री, त्रि० (न+दीङ् क्षये, वा दो अवखण्डने-क्तिन् । दितिः खण्डः । अदितः अखण्डः । भूमिः, निघ० १।१। वाक्, निघ० १।११। अदितिरदीना देवमाता, निरु० ४।२२) अदीन । अखण्ड । परमेश्वर । प्रकृति । विद्वान् । देवमाता अर्थात् विद्वानों की जन्मदात्री या माननीया वामानकर्त्री । वेदविद्या, सरस्वती माता । धरती माता ॥

अद्रि, पु० (अदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन् । उ० ४।६५। इति अद भक्षणे-क्रिन् । यद्वा, नञ्+दॄ विदारणे-रिन्, टिलोपः) न टूटनेवाला, दृढ़ । पहाड़ । पहाड़ के पदार्थ । वृक्ष । सूर्य । भूमि का रस खाने वाला, मेघ, बादल, निघ० १।१०॥

अद्रिबर्हस्, त्रि० (अद्रि+बर्हस् । बर्ह दाने, बाचि-असुन्) मेघ समान दानशील ॥

अनर्वण:, पु० पंचमी (अन्-अर्वन् । अर्वा = अश्वः । निघ० १।१४। अर्वा = ईरणवान् । निरु १०।३१। स्नामदिपद्यर्त्तिपॄशकिभ्यो वनिप् । उ० ४।११३। इति ऋ गतिप्रापणयोः-भावे वनिप् । नञ्तत्पुरुषः) अगति से । अज्ञान से । आलस्यसे ॥

अप्, नित्यस्त्री-बहुवचनम् (आप्नोतेर्ह्रस्वश्च उ० २।५८। इति आप्लृ व्याप्तौ-क्विप्, ह्रस्वश्च । आप्नुवन्ति ता आपः) व्यापक । परमेश्वर । प्रजा, श्रीमद्दयानन्दभाष्य, य० ६।२७॥ सूक्ष्म तन्मात्रा । य० २७।२६॥ प्राण, य० ३८।२३॥ जल ॥

अपाम्, (अप् शब्द देखो) प्रजाओं का । प्राणों का ।

अपिधान, न० (पिधानं वा । अपि+डुधाञ् धारणपोषणयोः-ल्युट्) सर्वथा धारण करने वाला । परमेश्वर । ढपना, ढकना । अंगरक्षा । चादर । सौरि । ओढ़ने का वस्त्र । वेष्टन, वेठन ॥

अप्रायु, त्रि० (न+प्र+आङ्+युञ् बन्धे, यद्वा, युङ् निन्दने-कु, वा कु) निर्बन्ध। निरालसी, अप्रमादी ॥

अभि-साच्, त्रि० (अभि+षच समवाये, सेचने-णिच्-क्विप्) अति मिलनसार ॥

अभिह्रुत्, त्रि० (अभि+ह्रु कौटिल्ये-क्विप्) टेढ़ा करने वाला। अनिष्टकारक। बड़ा कुटिल ॥

अरिष्टनेमि, त्रि० (अरिष्ट+नेमि। न+रिष, हिंसायाम्-क्त। नियो मिः। उ०४।४३। इति णीञ् प्रापणे-मि। नेमिः=वज्रः, निघ० २।२०) अटूट वज्रवाला। अटूट रथकी पुट्ठीवाला। दुर्जेय नायक ॥

अर्यमन्, पु० (अर्यं न्यायं श्रेष्ठं गमनं वा मिमीते मानयतीति। श्वनुक्षन्पूषन्० उ०१।१५६। इति अर्य+माङ् माने-कनिन्) न्यायकारी, श्रेष्ठों का मान करने वाला। परमेश्वर। राजा। गति करने वाला, सूर्य ॥

अर्हणा, स्त्री (अर्ह योग्यतायां पूजायां च-युच्। टाप्) योग्यता। पूजा ॥

अश्विना=०-नौ, पु०द्वि(अशूप्रुषिलटि०। उ० १।१५१। अशूङ् व्याप्तौ-क्वन्। अश्वः=व्याप्तिः-इनि) सूर्य और भूमि। सूर्य और चन्द्रमा। दो पुण्यात्मा राजा। दो विद्वान् स्त्री और पुरुष। दिन और रात, उनका काल आधी रात से पीछे है। देखो निरु० १२१ ॥

असुर, पु० (असुः प्राणः+रा दाने—क) प्राणदाता, बलदाता। परमेश्वर। मेघ, निघ० १।१०। विद्वान् पुरुष। (न सुरः) दैत्य, राक्षस ॥

अहि, पु० (सर्वधातुभ्य इन्। उ० ४।११८। इति अह, अहि गतौ दीप्तौ-इन्। गतिमान्। दीप्तिमान्। यद्वा, नञ्+हन वधे-इन्, डित्त्वात् टिलोपः। यद्वा। आङि श्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्च। उ०४।१३८। इति आङ्+हन—इन्। डित्त्वात् टिलोपः, आङो ह्रस्वश्च, इति अहिः=सर्पः—इत्यादि) गतिवाला। प्रकाश वाला। न मारने योग्य। न मारने वाला। परमेश्वर। सूर्य। मेघ, निघ० १।१०। जल, निघ० १।१२। मारने वाला वा तीव्र तेज वा दृष्टि वाला, सर्प। सर्पाकार एक तारागण (Draco or Dragon—J. N. Lockyer's Elementary Astronomy, P. 179)

अहिमाय, त्रि० (अहि+माया। अहि शब्द देखो। माछाशसिभ्यो यः। उ० ४।१०६ इति मा माने-य। टाप्। माया=प्रज्ञा निघ० ३।६) दीप्यमान बुद्धि वाला। गतियुक्त। बुद्धिवाला। अनष्ट बुद्धि। अहिंसकमति। सर्प वा सूर्य वा मेघ या जल की सी रक्षण बुद्धिवाला ॥

आ।

आदित्य, पु० (अघ्न्यादयश्च। उ०४।११२। इति आङ्+डुदाञ् दाने, वा दीपी दीप्तौ—यक्, निपातितः। यद्वा। दित्यदित्यादित्य०। पा० ४।१।८५। इति अदिति-ण्य। देखो अदिति) आदाता, ग्रहीता। प्रकाशमान। परमेश्वर। सूर्य। किरण। अदिति अर्थात् सरस्वती वा धरती माता का पुत्र, महा विद्वान्, बड़ा शूर ॥

आनशान त्रि० (अश्नुवान। अशूङ् व्याप्तौ—कानच्) पाता हुआ, पाकर ॥

आनशुः, क्रि० (आनशिरे, लेभिरे। अशूङ् व्याप्तौ-लिट्। छन्दसि परस्मैपदम्) उन्होंने पाया था ॥

आपः, स्त्री । अप् शब्द देखो ॥

इ ।

इन्द्र, पु० (ऋज्रेन्द्राग्रवज्र० । उ० २।२८ । इति इदि परमैश्वर्ये-रन्) बड़े ऐश्वर्य वाला । परमेश्वर । सूर्य । वायु । मेघ । राजा । शूर । विद्वान् । जीवात्मा ॥

इषे, क्रि० (य० १।१। इष्यामि गच्छामि व्याप्नोमि । इष गतौ दिवादिः । छन्दसि तुदादिः, आत्मनेपदी-लट् । इषति = गच्छति, निघ० २।१४) मैं व्यापक हूं ॥

ई ।

ईशत, क्रि० (य० १।१। ऐशत । ईश ऐश्वर्ये लङ्-न माङ्योगे पा० ६।४।७४। इति अडभावः, लोडर्थः) वह समर्थ होवे ॥

ईशे, त्रि० (ईश ऐश्वर्ये-लिट्) वह ईश्वर वा राजा था ॥

उ ।

उक्थशुष्म, त्रि० (उक्थ+शुष्म । वच कथने-थक् । अविसिविसि शुषिभ्यः-कित् । उ० १।१४४। इति शुष शोषणे-मन् । शुष्मम् = बलम्, निघ० २।६) बड़े बल वाला ॥

उद्भिद्, त्रि० (उद्+भिदिर् विदारणे-क्विप्) भेत्ता । विजयी । ऊपर चढ़ता हुआ ॥

उरुगाय, पु० (उरु+गै गाने वा गाङ् गतौ-घञ्) बहुगीयमान । बड़ी गति-वाला । उत्तम ज्ञान । बड़ा यश । बड़े यश वाला ॥

उरूची, स्त्री (ऋत्विग्दधृक्० । पा० ३।२।५६। इति उरु+अञ्चु गतिपूजनयोः-क्विन् । ङीप्, नलोपः, पूर्वसवर्ण-दीर्घः) बहुव्यापिनी । बहुगमना । दिशा । भूमि ॥

ऊ ।

ऊर्जे, क्रि० (य० १ १। ऊर्जयामि प्राणयामि बलवन्तं प्राणवन्तं वा करोमि । ऊर्ज बलप्राणनयोः, चुरादिः, छन्दसि श्वादिः, लट्) मैं बलवान् वा चेष्टा-वान् करता हूं ॥

ऋ ।

ऋजूयत, त्रि० (ऋजुमार्जवमात्मन इच्छति ऋजूयति । सुप आत्मनः-क्यच् । पा० ३ १।८। इति ऋजु-क्यच्-शतृ) ऋजुता चाहने वाला, सरल स्वभाव, धार्मिक ॥

ऋत्विज्, पु० (ऋत्विग्दधृक्० । पा० ३।२।५६। इति ऋतु+यज देवपूजासंगति-करणदानेषु-क्विन् । सम्प्रसारणम्) सब ऋतुओं में पूजनीय । परमेश्वर । वेदवेत्ता । सदा यज्ञकर्त्ता । पुरोहित ॥

ऋभु, पु० (ऋ गतौ-क्विप्+भू-डु । अरि गतौ ज्ञाने भवतीति । ऋभुः = मेधावी । निघ० ३।१५) बुद्धिमान् । महा प्रतापी ॥

ए ।

एकपात्, पु० (एकः पादोऽस्य । संख्यासु-पूर्वस्य । पा० ५।४।१४०। इति अलोपः) एक डग वाला । सब जगत् में एक रस व्यापक, परमेश्वर । देखो (पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि) य० ३१।३॥

ओ ।

ओ३म्, अव्य० (अवतेष्टिलोपश्च । उ० १।१५२। इति अव रक्षणे-मन्, टिलोपः। अथवा । अः = विराडादिः । उः = हिरण्यगर्भादिः । मकारः = ईश्व-

रादिः। प्लुतस्वरः) सर्वरक्षक । परमेश्वर । स्वीकार, हां ॥

क ।

कनिक्रदत्, त्रि० (अत्यर्थं क्रन्दयत् । क्रदि आह्वने, शब्दसातत्ये, यङ्लुकि-शतृ। दाधर्त्तिर्दधर्त्ति०। पा० ७।४।६५। इति निपात्यते) बहुत ही गरजता हुआ ॥

कृताकृत, न० (कृतं कार्यं अकृतं कारणं च । द्वन्द्वसमासः) किया हुआ और न किया हुआ । कार्य और कारण ॥

ग ।

गन्धर्व, पु० (गो+धृञ् धारणपोषणयोः-व । पृषोदरादिः) स्वर्गधर्ता । भूमिधारक । परमेश्वर । राजा । सूर्य । मेघ । गतिवान्, घोड़ा ॥

गो, ग्वां, पु० (गमेर्डोः । उ० २।६७ । इति गम्लृ गतौ—डो) गौ, बैल । भूमि । वाणी । स्वर्ग । वज्र । सूर्य । जल । इन्द्रिय । किरण । गति ॥

ग्ना, स्त्री, (धापॄवस्यज्यतिभ्यो नः । उ० ३।६ । इति गम्लृ गतौ-न, टिलोपः) विद्वानों वा पुत्रादिकों से पाने योग्य । वाणी, वाक्, निघ० १।११॥ स्त्री' निरु० ३।२१ । पत्नी ॥

ग्रावन्, पु० (अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते । पा० ३ २।७५। इतिगॄ निगरणे, वा गॄशब्दे विज्ञापने च—क्वनिप् । यथा । गारयते सूक्ष्मार्थं सुधीः) सूक्ष्मदर्शी, उपदेशक, पाषाण, पत्थर । मेघ, निघ० १।१० ॥

ज ।

जलाष, त्रि०, पु० (ज+लाष। जि जये वा जनी प्रादुर्भावे—ड । लष स्पृहायां —घञ् । जयस्य वा जानां जातानां लाषः अभिलाषो यस्मात सः) जय की वा जीवों की आशा पूरी करने वाला । सुखदायक ॥

जातवेदस्, त्रि० (जात+विद सत्तायां, ज्ञाने, वा, विद्लृ लाभे—असुन् । जाते जाते विद्यत इति वा जातवित्तो वा जातधनो जातविद्यो वा जातप्रज्ञानो वा, निरु० ७।१९) पदार्थों में विद्यमान। विद्यावान् । धनवान ॥

ज्योतिरनीक, त्रि०, पु०(ज्योतिस् + अनीक अतिहृषिभ्यां किच्च । उ० ४।१७। इति अन जीवने प्राणने—ईकन्) ज्योतियों में जीवन देने वाला । ज्योति की सेना वाला ॥

त ।

तार्क्ष्य, त्रि० (तृक्ष गतौ-घञ् । तार्क्षे वेगे साधुः । तत्र साधुः। पा० ४।४।९८ । इतितार्क्ष-यत्) वेगवान् । घोड़ा, अश्व, निघ० १।१४ ॥

त्रिषप्ताः, पु० (अथर्व० १।१।१ ॥ स्वस्तिवाचने म० ३१ ॥ त्रि+सप्त । तरतेर्ड्रिः। उ० ५।६६ । इति तॄ तरणे-ड्रि । तरति तारयति तार्यते वा त्रिः । परमेश्वरो जगद् वा । संख्यावाची वा । षप सममवाये = संबन्धे—क । यद्वा, त्रयश्च सप्त चेतित्रिषप्ता दश देवाः । यद्वा, त्रिगुणिताः सप्त, एक विंशति-संख्याकाः पदार्थाः । डच्प्रकरणे संख्यायास्तत्पुरुषस्योपसंख्यानंकर्तव्यम् । वार्तिकम, पा० ५।४।७३। इति समासे डच्) १—सब के तारक रक्षक परमेश्वर से सम्बन्धी पदार्थ। २—तारणीय जगत् से संबन्धी ॥ यद्वा, तीन से संबन्धी । ३—तीनों काल, भूत, वर्त्तमान और भविष्यत् से । ४—तीनों लोक, स्वर्ग, मध्य,

और भूलोक से । ५—सत्त्व, रज और तम तीन गुणों से । ६—ईश्वर, जीव और प्रकृति से संबन्धी॥ यद्वा, तीन और सात=दश । ७-चार दिशा, चार विदिशा, एक ऊपर और एक नीचे की दिशाओं के पदार्थ । ८—दश देव, पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय ॥ यद्वा, तीन गुणित सात=इक्कीस । ९—महाभूत ५+प्राण ५+ज्ञानेन्द्रिय ५+कर्मेन्द्रिय ५+अन्तःकरण १=इक्कीस देव ॥

द ।

दुर्विदत्रा, स्त्री, (क्षुविदेः कत्रन् । उ० ३।१०८ । इतिदुर्+विद ज्ञाने-कत्रन्, टाप्) दुष्ट बुद्धि, कुमति ॥

दुरेवा, स्त्री (इण् शीभ्यां वन् । उ० १।१५२। इति दुर्+इण् गतौ-वन्, टाप्) दुर्गति । कष्ट, संकट । कंगाली ॥

दृशि, स्त्री, पु० (इगुपधात् कित् । उ० ४।१२० । इति दृशिर् प्रेक्ष० इन्, स च कित्) दृष्टि । आंख । द्रष्टा । चेतन पुरुष ॥

द्यो, स्त्री, (द्युत दीप्तौ—डो) प्रकाश वाला । सूर्य आदि । स्वर्ग । आकाश ॥

ध ।

धन्वन्, न० (कनिन् युवृषितक्षि० । उ० १।१५६ । इति धन्व गतौ--कनिन्) मरुस्थल । निर्जल देश । धनुष ॥

ध्रुवि, त्रि० (भुजेः किच्च । उ० ४ १४२ । इति ध्रु, स्थैर्य-इ, स च कित्) स्थिर, अचल ॥

न ।

नपात्, पु० (नञ्+पत्लृ पतने-णिच्-क्विप् । णिलोपः । नभ्राण्नपात्० । पा० ६।३।७५ । इति नञः प्रकृतिभावः । न पातयतीति नपात् न पातयिता, स्थापयिता) न गिराने वाला । स्थापन करने वाला । सन्तान, निघ० २।२ ॥

निमिषत्, त्रि० (नि+मिष निमीलने = चक्षुर्मुद्रणे-शतृ) आंखें मूदे हुये । जड़ पदार्थ ।

प ।

पर्षत्, क्रि० (पॄ पालनपूरणयोः-लेटि अडागमः, सिप् च । पारयेत्) पार लगावे ॥

पीति, स्त्री, (घुमास्थागापा० । पा० ६।४।६६ इति पा पाने-क्तिनि ईत्वम् । यद्वा । पा रक्षणे, ओप्यायी, प्यैङ् वृद्धौ वा-क्तिन् क्तिच् वा । यथा । पः किच्च । उ० १।७१ । इति पा-तु । पिबति पाति वा स पीतुः । कित्वात् ईकारः) पान, पीना । रक्षा । बढ़ती । घोड़ा । अग्नि । सूर्य ॥

पुत्रकृथ, त्रि० (पुत्र+कृथ । पुवो ह्रस्वश्च । उ० ४।१६५ । इति पूञ् शोधे-क्त । पुनाति शोधयतीति पुत्रः । आत्मजः । पातॄतुदिवचि० । उ० २।७। इति कृञ् करणे-थक्) पुत्र उत्पन्न करने वाला । पुत्रों का कर्म । पुत्रों के कर्म से युक्त ॥

पुरन्धि, त्रि० (पुरुधीः, पृषोदरादिरूपम् । पुरु=बहु, निघ० ३।१। धीः=कर्म निघ० २।१। प्रज्ञानाम, निघ० ३।९। ध्यै चिन्तने-क्विप् । पुरन्धिर्बहुधीः, निरु० ६।१३। बहुकर्मा, बहुप्रज्ञः । यद्वा । पुरं गृहं नगरं शरीरं वा दधातीति । कर्मण्यधिकरणे च । पा० ३।३।९३। इति पुर+धाञ् धारण-पोषणयोः कि । अलुक्-समासः) बहुत कर्मवाला । बड़ा बुद्धिमान् । शरीरपोषक । बुद्धि । घर सुधारने वाली कुटुम्बिनी स्त्री ॥

पृश्नि, त्रि० (घृणिपृश्नि० । उ० ४।५२ । इति स्पृश स्पर्शे-नि, लोपसः । स्पृशति संयुक्तो भवतीति) छूने वाला । परमेश्वर । सूर्य । किरण । अन्तरिक्ष ॥

पेरु, पु० (मिपीभ्यां-रुः । उ० ४।१०१ । इति पीङ् पाने-रु । यद्वा । पा रक्षणे-रु । यद्वा । पॄ पूर्तिपालनयोः-रु) रस पीने वाला । रक्षक । पूरक । पारयिता । परमेश्वर । सूर्य । अग्नि । समुद्र ॥

प्रातर्यावन्, त्रि० (प्रातर्+यावन् । प्रातःतेररन् । उ० ५।५६ । इति प्र+अत सातत्यगतौ-अरन् । आमदिपद्यर्त्ति० । उ० ४।११३ । इति या गतौ-वनिप् । प्रातर् प्रकृष्टगत्या यातीति प्रातर्यावा) उत्तम गति से चलने वाला । प्रभात समय चलने वाला ॥

ब ।

बह्वीः, स्त्री (य० १।१। बह्वयः, अनेकाः । लङ्घिवंह्योर्नलोपश्च । उ० १।२६ । इति बहि वृद्धौ-कु । नलोपः । बंहते वर्धते बहुः । ङीष् । वा छन्दसि । पा० ६ । १ । १०६। इति जसः पूर्व सवर्णदीर्घः) वृद्धिशीलायें । बहुतसी (अनेक स्त्रियां) ॥

भ ।

भग, पु० (भगम् ऐश्वर्यम् । अर्श आदिभ्योऽच् । पा० ५ । २ । १२७ । इति अच्मत्वर्थे) ऐश्वर्य वाला । भगवान् । परमेश्वर । सूर्य । विद्वान् ।

भगस्, न० (भज सेवायाम्-असुन् । कुत्वम्) ऐश्वर्य। धन, निघ० २।१०॥

भुवस्, अव्य० (भूरञ्जिभ्यां-कित् । उ० ४ । २१७ । इति भूसत्तायां० प्राप्तौ च-असुन् । महाव्याहृतिरपि) आधार । अन्तर्यामी । परमेश्वर । आकाश, अन्तरिक्ष । अपान वायु ॥

भू, स्त्री (भू सत्तायां प्राप्तौ च-क्विप्) आधार । परमेश्वर । भूमि ॥

भूर्, अव्य० (भू सत्तायाम्-रुक् । महाव्याहृतिरपि) आधार । परमेश्वर, भूमि । प्राण ॥

म ।

मनीषिन्, त्रि० (कॄतॄभ्यामीषन् । उ० ४ । २६ । इति मनु अवबोधने-ईषन्, टाप् । मनीषा प्रज्ञा अस्यास्ति-इनि) मननशील । बुद्धिमान्, पण्डित ।

मरुतः, पु० ब० ब० (मृग्रोरुतिः । उ० १ । ६४ । इति मृङ्मृतौ-णिजर्थे-उति । मारयन्ति शत्रून् दोषान् वा । मरुतः = ऋत्विजः, निघ० ३ । १८) शूरबीर पुरुष । देवता लोग । वेदवेत्ता ऋत्विज्जन । वायु ॥

मिमीताम्, क्रि० (माङ्माने, जुहोत्यादिः । लोट्, एकवचनम्) वह माप करे, बनावे, करे ॥

य ।

यजुस्, न० (ब० ब० यजूंषि । अर्त्तिपृवपि यजि० । उ० २ । ११७ । इति यज देवपूजा संगति करणदानेषु-उसि) ब्रह्मविद्या । विज्ञान । सङ्गति । शिल्पविद्या । दान । यजुर्वेद ॥

योः, अव्य० (यु पृथक् करणे-डोस् । योः = यावनं भयानाम् । निरु० ४ । २१) भय से छुड़ानेहारा । निर्भयता॥

योनि, पु० स्त्री (वहिश्रिश्रुयुद्रु० । उ० ४ । ५१। इति यु मिश्रणामिश्रणयोः-नि) कारण। जल। घर, निघ० ३।४॥

र ।

रुद्र, पु० (रोदेर्णिलुक् च । उ० २ । २२ । इति रुद्र अश्रुविमोचने + णिच्–रक् । यद्वा । रुङ् गतौ–क्विप्, तुक् आगमः + रा दाने-क । रुत् ज्ञानं राति ददातीति रुद्रः । यद्वा । रुङ् वधे–क्विप्, तुक् + रुङ् वधे–उ । रुत् दुःखं रवते नाशयतीति रुद्रः) पापियों का रुलाने वाला । ज्ञान देने वाला । परमेश्वर । ज्ञानी । शूर । अग्नि । दुःखनाशक ॥

रेक्णस्, न० (रिचेर्धने घिच्च । उ० ४ । १९९ । इति रिचसम्पर्के वियोगयोः–असुन् । चात् नुट्, घित्त्वात् कुत्वम्) सुवर्ण । धन, निघ० २ । १० ॥

रोदसी (स्त्रियाम् एकवचनं द्विवचनम्, नपुंसके द्विवचनम् । अव्ययं च । सर्वधातुभ्योऽसुन् । उ० ४ । १८९ । इति रुधिर् निरोधे- असुन्, धस्य दः । रोदस् । स्त्रियां ङीप् । वा छन्दसि । पा० ६ । १ । १०६ । इति पूर्व सवर्ण दीर्घः) सब सृष्टि का रोकने वाला । प्रकाश । भूमि । द्यावा पृथिवी । सूर्य वा स्वर्ग और भूमि । उनके बीच में पदार्थ ॥

व ।

वरुण, पु० (कृवृदारिभ्य उनन् उ० ३।५३। इति वृञ् वरणे = स्वीकरणे, आच्छादने च–उनन्) वरणीय । श्रेष्ठ । ढक लेनेवाला । परमेश्वर । विद्वान् । सूर्य । जल । रात । अपान वायु, इत्यादि ।

वसु, त्रि० (वस निवासे–उ । श्वसोवसीयश्श्रेयसः पा० ५ । ४ । ८० । अत्र वसुः = प्रशस्तः) अति उत्तम । किरण । यज्ञ ।

वसु, न० । धन ।

विवास, क्रि० (विवासय । वि + वस स्तम्भस्नेहवधनिवासेषु–लोट्, चुरादिः, यलोपः । विवसति = परिचरति, निघ० ३ । ५) तू सेवा कर ।

बृहस्पति, पु० (बृहत् + पति । बृहतां, ब्रह्माण्डानां, वेदवचनानां, वा पतिः । पारस्करप्रभृतीनि० । पा० ६ । १ । १५७ । इति सुट्, तलोपः) बड़े बड़ों का स्वामी । ब्रह्माण्डों वा वेदवचनों का स्वामी । परमेश्वर । बड़ा विद्वान् । वेदाचार्य । सेनापति । आकाश में ग्रह विशेष ।

वैश्वानर, वि० (वैश्वनरः । तस्मैहितम् पा० ५ । १ । ५ । इति विश्वनर–अण् । दीर्घश्च । यद्वा । स्वार्थे अण् । विश्वं जगत् नृणाति नयतीति विश्वनरः = वैश्वानरः) जगन्नियन्ता । सब नरों का हितकारी ॥

श ।

शंयोः, अव्य, (शम् + याः । यु पृथक् करणे–डोस् । शंयोः शमनं च रोगाणां यावनं च भयाताम् । निरु० ४ । २१) शान्ति और निवृति । स्वस्थता और निर्भयता ।

शंस, पु० (शन्स हिंसास्तुतिकथनेषु–अच्) स्तुति । कथन । वचन । शासन । शासक ॥

संसृजेथाम्, क्रि० (संसृज्येथाम्, यलोपः । सृज त्यागे, दिवा० लोट् । सम् + सृज संसर्गे) तुम दोनों मिलो । प्राप्त करो ॥

सप्तहोतृ, पु० (सप्त + हु दानादानादनेषु–तृच्, तृन् वा) सात हवन करने वालों से पूरा किया गया, जो विषयों

के देने और लेने वाले शिर के सात गोलक हैं। देखो "(कः सप्त खानि विततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्। येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यान्ति यामम्) अथर्व० १०।२।६॥ प्रजापति ने शिर में सात गोलक खोदे थे, यह दो कान, दो नथने, दो आंखें और एक मुख। जिन के विजय की महिमा में चौपाये और दो पाये जीव अनेक प्रकार से मार्ग चलते हैं।" यजुर्वेद अ० २५ म० २८ में सात होताओं के यह नाम भी हैं। १-होता, २-अध्वर्यु, ३-आवया, ४-अग्निमिन्ध ५-ग्रावग्राभ, ६-शंस्ता, ७-सुविप्र॥

सप्तहोतृभिः पु०.(सप्तहोतृ देखो) सात हवन करने वालों के साथ॥

सानसि, त्रि (सानसिवर्णसि०। उ०४। १०७। इति षण संभक्तौ, षणुदाने-असि, उपधावृद्धिः) संभजनीय, सेवनीय। दाता। दातव्य॥

साम, न० (ब० ब० सामानि। सातिभ्यां मनिन्मनिणौ, उ० ४। १५३। इति षो नाशने-मनिन्। स्यति दुःखानि) दुःख नाशक ज्ञान। मोक्ष विद्या। गीयमान वेद विशेष॥

सूय, पु० (राजसूयसूर्य०। पा० ३।१।११४। इति सृ सरणे-क्यप्, ऋकारस्य ऊत्वम्। यद्वा। षू प्रेरणे-क्यप्, रुट्) चलने वाला। चलाने वाला। व्यापक। प्रेरक। परमेश्वर। सूर्य। विद्वान्॥

सोम, पु० (अर्त्तिस्तुसुहु०। उ० १।१४०। इति षु वा षू ऐश्वर्यप्रसवयोः-मन्) ऐश्वर्यवाला। उत्पन्न करने वाला। परमेश्वर। पिता। ऐश्वर्य। ऐश्वर्यवान् मनुष्य। चन्द्र। वायु। जल। अमृत। सोमलता॥

स्वर्, अव्य० (अन्येभ्योऽपि दृश्यते। पा० ३।२। ७५। इति सु+ऋ गतौ-विच्। यद्वा। स्वृ शब्दोपतापयोः-विच्। स्वरादित्यो भवति सु अरणः सु ईरणः। निरु० २।१४। महाव्याहृतिरपि) अच्छा चलने वाला वा चलाने वाला। सु व्यापक। परमेश्वर। ध्यान। स्वर्ग। सुख। मोक्ष। जल, निघ० १।१२। आकाश॥

स्वरु, पु० (शॄ स्वृस्निहि०। उ० १।११। इति स्वृ शब्दोपतापयोः-उ) वज्र। यूप। जयस्तम्भ। यज्ञ। सूर्य। किरण। बाण॥

स्वप्नस्, त्रि० (सु+अप्नस्। आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा। उ० ४।२०८। इति आप्लृ व्याप्तौ-असुन्, नुट्, ह्रस्वश्च। अप्नः कर्म, निघ० २।१) सुकर्मी। कर्म कुशल॥

स्वाहा, अव्य० स्त्री (सु+आङ्+ह्वेञ् आह्वाने-डा। स्वाहेत्येतत् सु आहेति वा स्वा वागाहेति वा स्वं प्राहेति वा स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा निरु० ८।२०) सुवाणी, स्तुति। वाक् निघ० १।११। सुन्दर आहुति, सुदान॥

ह।

हवन, न० (हु दानादानादनेषु-ल्युट्) देना। लेना। भोगना। ईश्वर को भक्ति से अपने शुभ काम सौंपना, आत्मबल पाना और आनन्द भोगना। मन्त्र से आग में घृत आदि चढ़ाना। होम। अग्निहोत्र। यज्ञ। हविर्दान॥

हिरण्यगर्भ, पु० (हिरण्य+गर्भ । हर्यतेः कन्यन् हिर् च । उ० ५।४४। इतिहर्य गतिकान्त्योः-कन्यन् । अर्त्तिगृभ्यां भन् । उ० ३।१५२। इति गृ शब्दे निगरणे वा-भन् । गीर्यते स्तूयते मनुष्यैः, गिरति भक्षयति अनर्थान् इति गर्भः) तेजवाले सूर्यादि लोकों का, वा विद्या, सुवर्णादि धनों का आधार । परमेश्वर ॥

हुत्, त्रि० (हु दानादानादनेषु–क्विप्, तुक् च) स्वीकार करने वाला ॥

हृत्प्रतिष्ठ, त्रि० (हृत्+प्रतिष्ठा । हृदि प्रतिष्ठा स्थितिर्यस्य) हृदय में प्रतिष्ठा वा स्थिति वाला । अन्तःकरण में ठहरा हुआ ॥

होत्रा, स्त्री, (हुयामाया श्रुभसिभ्यस्त्रन, उ० ४।१६८। इति हु दानादानादनेषु त्रन्, टाप् । हूयते दीयते वा) वाक् निघ० १।११। यज्ञ, निघ० ३।१७। वाणी, वेदवाणी । होम । स्तुति ॥

इति श्री पण्डित क्षेमकरणदास त्रिवेदिना कृतो हवनमन्त्र-शब्दसंग्रहः समाप्तः ॥

ग्रन्थकर्ता के रचे पुस्तक ।

मूल्य

१–रुद्राध्याय (यजुर्वेद अध्याय १६) शब्दसाधन, व्याख्या, भाषा–अंगरेज़ी अनुवाद, शिक्षा आदि सहित ।≈)

२–रुद्राध्याय (यजुर्वेद अध्याय १६) मन्त्र पाठ संशोधित)॥।

३–हवनमन्त्र (ईश्वरस्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण और हवनमन्त्र) आर्यभाषा में अनुवाद, छन्द, टिप्पणी, शब्दसङ्ग्रह आदि सहित ।)॥

४–अथर्ववेद भाष्य शीघ्र प्रकाशित होने वाला है ।

पता–पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी

५२ लूकरगंज, प्रयाग (अलाहाबाद)